जुलाई 2001 मूल्य : सात रुपये

कुरुक्षेत्र

ग्रामीण विकास को समर्पित

जनसंख्या विस्फोट के ख़तरे और नई जनसंख्या नीति

जलसंभर विकास कार्यक्रमों में लोगों की भागीदारी की व्यवस्था

वीडियो सम्मेलन प्रणाली का ग्रामीण विकास मंत्री द्वारा उद्घाटन

जलसंभर कार्यक्रम देशभर में समन्वित ग्रामीण विकास का एक महत्वपूर्ण माध्यम बन गया है, जिससे जलसंभर क्षेत्रों में सामुदायिक सहभागिता और प्रबंध में भागीदारी तथा संपत्ति संसाधनों के विकास की पक्की व्यवस्था होगी और सामाजिक–आर्थिक बदलाव आएगा। यह बात ग्रामीण विकास मंत्री श्री एम. वेंकैया नायडु ने 11 जून 2001 को नई दिल्ली में उत्तर प्रदेश और कर्नाटक के मुख्यमंत्रियों के साथ आयोजित एक वीडियो सम्मेलन के दौरान कही। वीडियो सम्मेलन प्रणाली ग्रामीण विकास कार्यक्रमों को लागू करने में आ रही कठिनाइयों और प्रगति पर राज्य सरकारों के आमने–सामने चर्चा के लिए मंत्रालय के भू– संसाधन विभाग में लगाई गई है। श्री नायडु ने कहा कि जलसंभर प्रबंध कार्यक्रम के लिए संशोधित दिशा–निर्देश बनाने के उपाय किए गए हैं। जलसंभर कार्यक्रम पर लागत के मापदंड 4000 रुपये से बढ़ाकर 6000 रुपये प्रति हैक्टेयर करने का प्रस्ताव किया गया है।

उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री श्री राजनाथ सिंह ने वीडियो सम्मेलन के दौरान बताया कि जलसंभर विकास कार्यक्रम के तहत 34 परियोजनाएं चल रही हैं। भूमि–रिकार्ड के कम्प्यूटरीकरण के तहत 99 हजार गांवों में से 79 हजार गांवों को कवर किया जा चुका है। श्री नायडु ने जोर देकर कहा कि जिला ग्रामीण सड़क योजना बनाते समय स्थानीय सांसदों के सुझावों को ध्यान में रखा जाना चाहिए। श्री नायडु ने उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा चकबंदी के कार्यों की सराहना की।

कर्नाटक के मुख्यमंत्री श्री एस.एम. कृष्णा ने बताया कि राज्य सरकार ने सभी जिलों में निगरानी व्यवस्था की है। श्री नायडु ने कर्नाटक में भू–रिकार्ड के कम्प्यूटरीकरण और राज्य सरकार द्वारा ताल्लुक स्तर पर कियोस्क लगाने के लिए किए गए उपायों की सराहना की।

ग्रामीण विकास मंत्री ने कहा कि भू–संसाधन विभाग ने 2000–2001 में 7,236 जलसंभरों के लिए विकास परियोजनाओं को मंजूरी दी जबकि 1995–96 से 1999–2001 की अवधि में 15,704 जलसंभर परियोजनाएं मंजूर की गई थीं। उन्होंने कहा कि उपयुक्त तरीके से कार्यक्रम को लागू करने की पक्की व्यवस्था के लिए जिला स्तर और राज्य स्तर के सहयोग से निगरानी प्रणाली मजबूत की जा रही है। श्री नायडु ने बताया कि इससे स्थायी आधार पर परियोजनाओं की प्रगति की रफ्तार और गुणवत्ता के बारे में समय पर जानकारी मिल सकेगी।

मंत्री महोदय ने आशा व्यक्त की कि परियोजनाओं के क्रियान्वयन के सिलसिले में सूचनाओं के आदान–प्रदान के लिए अधिक से अधिक वीडियो सम्मेलन होंगे।

साभार : पत्र सूचना कार्यालय

कुरुक्षेत्र

ग्रामीण विकास मंत्रालय
की
प्रमुख मासिक पत्रिका

वर्ष 46 अंक 9

आषाढ़–श्रावण 1923

जुलाई 2001

संपादक
बलदेव सिंह मदान

उप संपादक
जयसिंह

संपादकीय पता
संपादक, 'कुरुक्षेत्र',
ग्रामीण विकास मंत्रालय,
कृषि भवन, नई दिल्ली–110001
दूरभाष : 3015014
फैक्स : 011–3015014
तार : ग्राम विकास

संयुक्त निदेशक (उत्पादन)
डी.एन. गांधी

विज्ञापन प्रबंधक
पी.सी. आहूजा

आवरण सज्जा
विवेक

फोटो साभार :
आई.ई.सी. डिवीजन, ग्रामीण विकास मंत्रालय

मूल्य एक प्रति : सात रुपये
वार्षिक शुल्क : 70 रुपये
द्विवार्षिक : 135 रुपये
त्रिवार्षिक : 190 रुपये

विदेशों में (हवाई डाक द्वारा)
पड़ोसी देशों में : 500 रुपये (वार्षिक)
अन्य देशों में : 700 रुपये (वार्षिक)

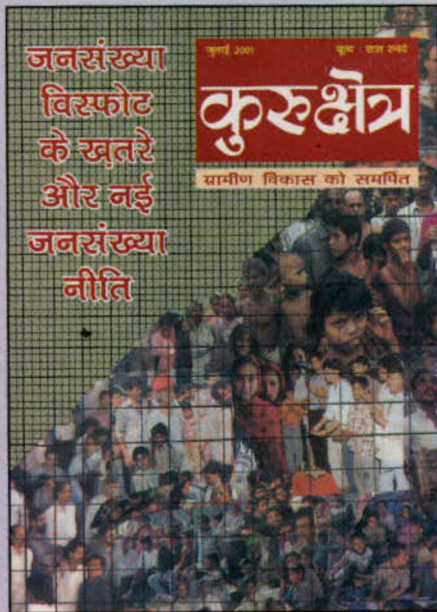

'कुरुक्षेत्र' की एजेन्सी लेने, ग्राहक बनने और अंक न मिलने की शिकायत के बारे में विज्ञापन और प्रसार प्रबंधक, प्रकाशन विभाग, ईस्ट ब्लाक–4, लेवल–7, आर.के. पुरम, नई दिल्ली–110 066 से पत्र–व्यवहार करें। विज्ञापनों के लिए विज्ञापन प्रबंधक, प्रकाशन विभाग, ईस्ट ब्लाक–4, लेवल–7, आर.के. पुरम, नई दिल्ली–110 066 से संपर्क करें। फोन : 6105590

हिन्दी के अतिरिक्त अंग्रेजी में भी प्रकाशित होने वाली इस पत्रिका में प्रकाशित लेखों में अभिव्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं तथा यह आवश्यक नहीं कि सरकारी दृष्टिकोण भी वही हो।

इस अंक में

पंचायतों में महिलाओं की भागीदारी कितनी कारगर, कितनी सार्थक	डा. ललित कुमार त्यागी व डा. बी.पी. सिन्हा	3
उत्तरांचल में भावी पंचायतीराज	डा. महीपाल	5
जनसंख्या विस्फोट के खतरे और राष्ट्रीय नीति	प्रदीप पंत	7
कैसे हो जनसंख्या नियंत्रण	डा. दौलतराज थानवी	10
क्षितिज की ओर (कहानी)	साबिर हुसैन	12
स्वैच्छिक संगठन : ग्रामीण विकास के सर्वोत्तम अभिकर्ता	राजन मिश्रा	15
ग्रामीण विकास में कृषि विज्ञान केंद्रों की भूमिका	डा. नलिन चन्द्र त्रिपाठी	17
मध्य प्रदेश में सहकारी आंदोलन ग्रामीण विकास का एक सशक्त माध्यम	डा. बालमुकुन्द बघेल	20
बालिका श्रमिक, एक राष्ट्रीय समस्या	रवि प्रकाश यादव	23
ऊसर भूमि सुधार एवं प्रबन्ध	गंगाशरण सैनी	26
निर्यात–आयात नीति और ग्रामीण अर्थव्यवस्था	वेद प्रकाश अरोड़ा	31
गांव के बच्चे क्या खेलें, इसकी चिंता कौन करेगा	अनिल चमड़िया	36
ग्रामीण रोजगार का साधन : गौ पालन व्यवसाय	एम. भारती	39
बढ़ता शोर प्रदूषण मानव–जीवन के लिए अशुभ संकेत	संजय कुमार रोकड़े	41
शहद खाइए, स्वस्थ दीर्घ जीवन पाइए	महाराज	43

पाठकों के विचार

लोगों की भागीदारी विकास के लिए आवश्यक

बजट पेश होने के बाद *कुरुक्षेत्र* का संग्रहणीय अप्रैल अंक मिला। मध्य प्रदेश सरकार ने ग्राम स्वराज्य व्यवस्था के लिए जो पहल की है वह अत्यन्त प्रशंसनीय है क्योंकि देश का भविष्य गांवों में पलता–बढ़ता है। गांवों के किसान अपनी मेहनत द्वारा पूरे देश को पोषित करते हैं। भारत के गांवों का किसान आज़ादी के 53 वर्ष बाद भी मूलभूत सुविधा और विकास से आज तक वंचित है। यह सुधार और विकास तभी संभव है जब इसका मौका स्वयं ग्रामीणों को दिया जाए। अच्छा होता गरीबी में प्रथम और द्वितीय प्रदेश का तगमा लिए उत्तर प्रदेश और बिहार में भी विकास की सार्थक पहल होती।

वर्ष 2001– 2002 के बजट में ग्रामीण विकास के विषय में पढ़कर अच्छा लगा वहीं अनिल कुमार चौबे की कहानी *सरसों के फूल* भी पसंद आई। निरंजन कुमार सिंह की शिशु मृत्यु दर पर उठाई गई चिन्ता काबिले गौर है। ग्रामीण विकास को समर्पित पत्रिका *कुरुक्षेत्र* का प्रयास प्रशंसनीय है।

वंदना सिंह 'वंदु', द्वारा श्री अमलेन्द्र कुमार, ग्राम व पोस्ट – देवनहरी, जिला – इलाहाबाद, 221507

मुझे *कुरुक्षेत्र* हर माह नई खोजी जानकारी से परिपूर्ण लगती है। ग्रामीण उत्थान की जो जानकारी इस पत्रिका से हासिल होती है वह अन्य किसी पत्रिका से प्राप्त नहीं होती है। अप्रैल अंक में बजट में ग्रामीण विकांस पर जानकारी, तथा ग्रामीण अर्थव्यवस्था के सुदृढ़ीकरण में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के योगदान पर जानकारी काफी महत्वपूर्ण लगी। पत्रिका में कम से कम दो कहानियां, पांच कविताएं प्रकाशित की जाएं। आशा है मेरी मांग और सुझाव पर ध्यान दिया जाएगा।

बद्री प्रसाद वर्मा अनजान, गोलाबाजार, गोरखपुर, उ.प्र. 273408

विभिन्न कार्यक्रमों का यथार्थपरक लेखा–जोखा प्रस्तुत किया गया

मार्च 2001 का *कुरुक्षेत्र* पिछले अंकों की तरह बड़ा ही उपयोगी लगा। *"कैसे संभव होगा गांवों का वास्तविक विकास?"* जैसे आलेख में पहली पंचवर्षीय योजना से लेकर वर्तमान में चल रही नौवीं योजना तक के कार्यक्रमों एवं विभिन्न योजनाओं के संचालन का संक्षिप्त किन्तु अन्वेषणात्मक विवरण प्रस्तुत किया गया है। विकास की धारा में अपार धन व्यय के बावजूद अपेक्षित सफलता नहीं मिल पाने में विद्वान लेखक डा. उमेश चन्द्र जी ने जिन तथ्यों का उद्घाटन किया है, उनके अतिरिक्त कार्यपालक एजेन्सियों पर दायित्व निर्धारण का अभाव, उद्देश्य की सफलता–विफलता के सही आकलन का अभाव एवं तदनुरूप कुशल कार्यवाहक एजेन्सी के पुनर्गठन आदि का अभाव भी अपेक्षित सफलता न मिल पाने के प्रमुख कारण हैं। सफलता हेतु दिए गए सुझावों में – पंचायती राज की मजबूती, जनसंख्या नियंत्रण, रोजगार एवं स्वरोजगार के अवसरों का सृजन, बैंक ऋण में सबसिडी हटाने एवं ऋण माफी प्रवृत्ति पर रोक आदि अत्यन्त ही व्यावहारिक हैं।

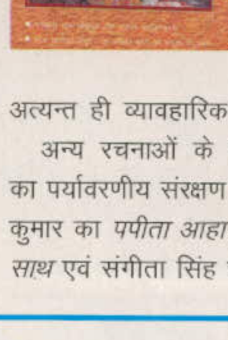

अन्य रचनाओं के साथ कमलेश तिवारी का पर्यावरणीय संरक्षण संबंधी आलेख, विजय कुमार का *पपीता आहार और रोजगार साथ–साथ* एवं संगीता सिंह चंदेल का *स्वतंत्रता के पचास वर्षों में नारी की स्थिति* आदि लेख पसंद आए।

जसविन्दर शर्मा की कहानी *'अपना–अपना सच'* और मनोज कुमार पाण्डेय का *'दरवाजा को खुलना होगा'* कविता बहुत अच्छी लगी।

रामाधार ठाकुर, बड़कागांव, मोतिहारी, बिहार

ग्रामीण पत्रकारिता पर और लेख छापें

कुरुक्षेत्र का फरवरी अंक पढ़ा। काफी अच्छा लगा। मैं चूंकि गांव में रहता हूं और इग्नू द्वारा पत्रकारिता एवं जनसंचार में पी.जी. कर रहा हूं। अतः *'ग्रामीण विकास और मीडिया'* तथा *'ग्रामीण विकास तेज करने में जन संचार माध्यमों की भूमिका'* शीर्षक के लेख पढ़ने के बाद घर बैठे ही कुछ अनुत्तरित सवालों का जवाब पा सका। ग्रामीण पत्रकारिता की कुछ और सच्चाइयों को उजागर करने वाले लेख अगले अंकों में जरूर छापें।

चाहे ब्लैक बोर्ड जर्नलिज्म की बात हो या दीवार पत्रिका की, निजी और सरकारी प्रयासों की सर्वत्र कमी है। हमारे इलाके में 'कोऑपरेटिव मिल्क फेडरेशन' तथा 'नेहरू युवा केन्द्र' ने दीवार तथा ब्लैक बोर्ड पत्रकारिता के क्षेत्र में कुछ प्रयास किए हैं। आज की तारीख में ऐसी पत्रकारिता की प्रबल आवश्यकता है क्योंकि, इसके जरिये जहां एक ओर ग्रामीण विकास की पत्रकारिता तो होगी ही दूसरी ओर साक्षरता, वाचनालय और सूचना के अधिकार संबंधी कार्य भी स्वतः गांवों में होने लगेंगे। पंचायत प्रतिनिधि भी सूचना के अभाव में कठपुतली मात्र ही हैं। ग्रामीण विकास विभाग, सूचना प्रसारण विभाग यदि कुछ ऐसा विकास चाहें तो और शीघ्रता से इसे किया जा सकता है। हां, अंत में 'लोकभाषा के रेडियो प्रसारणों' की बात भी नहीं भूली जा सकती।

राजेन्द्र कुमार पाठक, अंधारी, भोजपुर, बिहार

पंचायतों में महिलाओं की भागीदारी कितनी कारगर, कितनी सार्थक

डा. ललित कुमार त्यागी*
डा. बी.पी. सिन्हा**

पंचायतों में महिलाओं की भागीदारी को महत्वपूर्ण माना गया है। चूंकि महिलाओं को घरेलू, बच्चों, पोषण, इत्यादि विषयों से जुड़ी समस्याओं की अच्छी समझ होती है, अतः उनकी भागीदारी से विकास क्रियाकलापों में व्यापकता आने का अनुमान है। कुछ लोगों का यह भी मानना है कि महिलाएं अपने उद्देश्यों के प्रति पुरुषों की अपेक्षा अधिक ईमानदार, उत्साही और प्रतिबद्ध होती हैं। अतः नए अधिनियम में महिलाओं की भागीदारी सुनिश्चित करने हेतु पंचायतों के एक तिहाई स्थान तथा सरपंचों के भी एक तिहाई पद महिलाओं के लिए आरक्षित किए गए हैं।

ऐसा माना गया है कि आरक्षण महिलाओं को निर्वाचित प्रतिनिधि के रूप में कार्य करने का अवसर प्रदान करेगा। वे यह जानेंगी कि सार्वजनिक जीवन में कैसे कार्य किया जाता है, कैसे समस्याएं सुलझाई जाती हैं तथा कैसे कठिन परिस्थितियों का सामना किया जाता है। यह उनके लिए एक अच्छा धरातल होगा जिससे वे भविष्य में वृहत्तर भूमिका के लिए तैयार हो सकेंगी। इस आस्था के बावजूद इस बारे में बहुत संशय था कि महिलाओं की पंचायतों में भागीदारी से फायदा होगा या नहीं। अतः इस मुद्दे को गांवों में जाकर समझना आवश्यक हो जाता है।

एक अध्ययन

लेखकों ने राजस्थान तथा हरियाणा राज्यों के क्रमशः अलवर तथा गुड़गांव जिलों की आठ ग्राम पंचायतों, चार पंचायत समितियों तथा दोनों जिला परिषदों के चुने हुए कुल 139 निर्वाचित प्रतिनिधियों, 40 गैर–प्रतिनिधियों (आम ग्रामीण) तथा 31 पंचायत कर्मचारियों से साक्षात्कार द्वारा यह पता लगाने का प्रयास किया कि पंचायतों में महिलाओं की भागीदारी से लोगों को क्या–क्या लाभ और क्या कठिनाइयां महसूस हो रही हैं।

तालिका 1

पंचायतों में महिलाओं की भागीदारी से होने वाले लाभ :

	लाभ	पुरुष (%)	महिला (%)	कर्मचारी (%)
1.	विचार व्यक्त करने का अवसर	36	64	71
2.	घर से बाहर की जानकारी में वृद्धि	27	52	58
3.	आत्मविश्वास एवं आत्मसम्मान में वृद्धि	30	39	58
4.	विकास मुद्दों का व्यापक होना	11	25	39
5.	कोई लाभ नहीं	43	18	16

पंचायतों में महिलाओं की भागीदारी से लाभ

महिलाओं के मुद्दे पर निर्वाचित प्रतिनिधियों तथा गैर–प्रतिनिधियों के विचारों में दोनों ही जिलों में विशेष अन्तर नहीं था। अतः प्रस्तुतीकरण को सरल बनाने के उद्देश्य से केवल महिला एवं पुरुष प्रतिनिधियों (दोनों जिलों के प्रतिनिधि एवं गैर–प्रतिनिधि संयुक्त रूप से) के विचारों में विद्यमान भिन्नता पर ही ध्यान केन्द्रित किया गया है। पंचायत कर्मचारी जो कि सरकारी प्रतिनिधि होते हैं, एक बाहरी व्यक्ति के रूप में महत्वपूर्ण जानकारी दे सकते हैं, अतः उनके विचारों पर भी गौर किया गया।

तालिका 1 से स्पष्ट है कि लगभग एक–तिहाई पुरुषों एवं दो–तिहाई महिलाओं तथा कर्मचारियों का मानना था कि पंचायतों में महिलाओं को आरक्षण दिए जाने से उनको भी विकास प्रक्रिया में अपने विचार व्यक्त करने का अवसर मिला है। लगभग आधी महिलाओं एवं कर्मचारियों तथा एक चौथाई पुरुषों ने बताया कि आरक्षण द्वारा पंचायतों में पहुंच जाने से महिलाओं में घर से बाहर की जानकारी बढ़ रही है, उनमें समझदारी बढ़ रही है। पंचायत बैठकों में उन्हें विकास कार्यक्रमों की जानकारी मिलती है।

एक तिहाई पुरुषों एवं महिलाओं तथा आधे से अधिक कर्मचारियों ने बताया कि पंचायतों में आने से महिलाओं का आत्म–सम्मान और उनमें आत्म–विश्वास भी बढ़ा है, हांलाकि अभी बहुत कम महिलाएं ही सक्रिय रूप से पहल कर रही हैं। कुछ लोगों का यह भी विचार था कि आरक्षण द्वारा महिलाओं के

* वैज्ञानिक, राष्ट्रीय मत्स्य आनुवांशिक संसाधन ब्यूरो, कैनाल रिंग रोड, पो. आ. दिलकुशा, लखनऊ–226002
** भू.पू. अध्यक्ष कृषि प्रसार संभाग, भा.कृ.अनु.सं., नई दिल्ली–110012

पुरुषों के साथ प्रशिक्षण में भाग लेती हुई महिला पंचायत प्रतिनिधि

पंचायतों में आने से विकास के मुद्दों में व्यापकता आई है। उनका कहना था, चूंकि बहुत से मामलों (जैसे – घर–सम्बन्धी) को महिलाएं, पुरुषों की अपेक्षा बेहतर समझती हैं और उनका ध्यान इन मुद्दों पर अधिक रहता है। अतः महिलाओं के आने से इन पर अधिक ध्यान दिया जा रहा है। ऐसा विचार व्यक्त करने वाले अधिकतर पढ़े–लिखे लोग थे।

यहां पर एक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि लगभग आधे पुरुषों का मानना था कि आरक्षण द्वारा पंचायतों में महिलाओं की भागीदारी से कोई विशेष लाभ नहीं हुआ है। इन लोगों का कहना था कि पंचायतों में अधिकतर महिलाएं निष्क्रिय रहती हैं, ग्रामीण समाज में महिलाओं को विकास सम्बन्धी कार्यों की कोई समझ नहीं होती है और वे जो कुछ मीटिंग में बोलती भी हैं वह वही होता है जो उनके घर वाले बताकर भेजते हैं। अतः उनके पंचायतों में चुने जाने से पंचायतों में उनकी संख्या तो बढ़ गई है किन्तु इससे कोई लाभ नहीं हुआ है। अधिकतर महिलाएं तथा पंचायत कर्मचारी इस विचार से सहमत नहीं थे।

तालिका 2

पंचायतों में महिलाओं की भागीदारी से होने वाली कठिनाइयां

	कठिनाइयां	पुरुष (%)	महिला (%)	कर्मचारी (%)
1.	घरेलू कार्य की उपेक्षा	51	27	26
2.	गरीब परिवारों में आर्थिक गतिविधियों में कमी	37	25	26
3.	महिला होने का अनुचित लाभ उठाना	39	0	22
4.	पुरुषों को पंचायत कार्य के अवसरों में कमी	7	0	0
5.	पंचायत में विवादों में बढ़ोतरी	30	18	29
6.	कोई कठिनाइयां नहीं	22	48	58

पंचायतों में महिलाओं की भागीदारी में कठिनाइयां

लगभग आधे पुरुषों तथा एक–चौथाई महिलाओं एवं कर्मचारियों का मानना था कि पंचायत गतिविधियों में समय देने के कारण घरेलू कार्य की उपेक्षा हो रही है (तालिका 2)। कुछ लोगों का मानना था कि बहुत से गरीब परिवारों में महिलाएं भी आर्थिक गतिविधियों में हाथ बंटाती हैं, अब आरक्षण द्वारा उनके पंचायतों में चुने जाने से ऐसे परिवारों की

(शेष पृष्ठ 11 पर)

उत्तरांचल में भावी पंचायतीराज

डा. महीपाल

लम्बे संघर्ष के बाद अन्ततः भारत के नक्शे पर नया राज्य उत्तरांचल प्रदेश उभर कर आ पाया। अब प्रदेश बनने के बाद महत्वपूर्ण बात है कि प्रदेश की राजनीति की लगाम जनता के हाथ में हो। दूसरे शब्दों में सत्ता उनके हाथों में रहे जिनकी वह वास्तव में है इसके लिए राज्य के राजकाज में आम जनता की भागीदारी सुनिश्चित करना बहुत जरूरी है। अगर ऐसा नहीं होता तो नया राज्य बन जाने से भी नेताओं व नौकरशाहों का ही सत्ता में बोलबाला रहेगा। 73वें 74वें संविधान संशोधनों में आम जनता की सत्ता में भागीदारी के लिए कानून खाका प्रस्तुत किया गया है।

73वें संविधान संशोधन की धारा 243(छ) कहती है कि पंचायतों की शक्तियों, प्राधिकार और उत्तरदायित्व–संविधान के उपबंधों के अधीन रहते हुए, किसी राज्य का विधान–मंडल, विधि द्वारा, पंचायतों को ऐसी शक्तियां और प्राधिकार प्रदान कर सकेगा, जो उन्हें स्वायत्त शासन की संस्थाओं के रूप में कार्य करने में समर्थ बनाने के लिए आवश्यक हों और ऐसी विधि में पंचायतों को उपयुक्त स्तर पर, ऐसी शर्तों के अधीन रहते हुए, जो उसमें निर्दिष्ट की जाएं, निम्नलिखित के संबंध में शक्तियां और उत्तरदायित्व न्यागत करने के लिए प्रबंध किए जा सकेंगे, अर्थात् – क. *आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय के लिए योजनाएं तैयार करना,* ख. *आर्थिक विकास कार्यान्वित करना और सामाजिक न्याय की ऐसी स्कीमों को,* जो उन्हें सौंपी जायें, जिनके अंतर्गत वे स्कीमें भी हैं जो ग्यारहवीं अनुसूची में सूचीबद्ध विषयों के संबंध में हैं।

ग्यारहवीं अनुसूची में 29 विषय सूचीबद्ध हैं। यह सूची अनुबंध 1 में दी गई है। इसी प्रकार 74वें संविधान संशोधन की धारा 243(ब) कहती है कि नगरपालिकाओं, आदि की शक्तियां, प्राधिकार और उत्तरदायित्व – इस संविधान के उपबंधों के अधीन रहते हुए, किसी राज्य का विधान–मंडल, विधि द्वारा

क. नगरपालिकाओं को ऐसी शक्तियां और प्राधिकार प्रदान कर सकेगा जो उन्हें स्वायत्त शासन की संस्थाओं के रूप में कार्य करने में समर्थ बनाने के लिए आवश्यक हों और ऐसी विधि में नगरपालिकाओं को, ऐसी शर्तों के अधीन रहते हुए, जो उसमें विनिष्टि की जाएं निम्नलिखित के संबंध में शक्तियां और उत्तरदायित्व न्यागत करने के लिए उपबंध किए जा सकेंगे अर्थात –

(1) आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय के लिए योजनाएं तैयार करना।

(2) ऐसे कृत्यों का पालन करना और ऐसी स्कीमों को, जो उन्हें सौंपी जायें, जिनके अंतर्गत वे स्कीमें भी हैं जो बारहवीं अनुसूची में सूचीबद्ध विषयों के संबंध में है, कार्यान्वित करना। बारहवीं अनुसूची में 18 विषय सूचीबद्ध हैं। यह अनुसूची अनुबंध II में दी गई है।

ख. समितियों को ऐसी शक्तियां और प्राधिकार प्रदान कर सकेगा जो उन्हें अपने को प्रदत्त उत्तरदायित्वों को, जिनके अर्न्तगत वे उत्तरदायित्व भी हैं जो बारहवीं अनुसूची में सूचीबद्ध विषयों के संबंध में हैं, कार्यान्वित करने में समर्थ बनाने के लिए आवश्यक हों।

नवगठित राज्य की विधान सभा के सामने यह स्वर्णिम अवसर है कि वह पंचायती राज अधिनियम के माध्यम से पंचायती राज को ऐसा वैधानिक स्वरूप प्रदान करे कि वे सही मायनों में प्रदेश के गांवों में महात्मा गांधी के सपनों का 'ग्राम स्वराज' या डा. लोहिया के सपनों का 'चौह खम्बा राज' स्थापित हो सके। उत्तरांचल से विकेंद्रीकरण की ऐसी नदियां फूटें जो सम्पूर्ण देश को लाभान्वित करें। इस लेख में यह बताने का प्रयास किया गया है कि अगर उत्तरांचल में सही मायनों में लोगों की आकांक्षाओं व इच्छाओं को पूरा करना है तो पंचायती राज व्यवस्था को वैधानिक स्वरूप द्वारा मजबूत आधार देना होगा जिसके लिए मुख्यतः निम्न कदम उठाने आवश्यक हैं।

पंचायतों के विभिन्न स्तरों पर कार्यों का उचित प्रकार से बंटवारा

73वें संविधान संशोधन की 11वीं अनुसूची में 29 विषयों को पंचायतों के लिए सूचीबद्ध तो कर दिया, लेकिन इनका पंचायतों के विभिन्न स्तरों पर बंटवारा कैसे होगा, इसको नहीं बताया गया। इसलिए विभिन्न राज्यों ने पंचायत के विभिन्न स्तरों की क्षमता को देखे बिना आनन–फानन में पंचायतों को कार्य सौंप दिए।

उत्तरांचल में जब नया पंचायत अधिनियम बने तो उसमें संविधान संशोधन की 11वीं सूची में सूचीबद्ध 29 विषयों में से कार्यों का बटवारा पंचायतों के विभिन्न स्तरों की क्षमता को ध्यान में रखकर करना होगा। दूसरे शब्दों में, जो कार्य उचित ढंग से जिस स्तर पर किया जा सकता है वह उसी स्तर पर करना चाहिए न कि उसके नीचे या ऊपर के स्तर पर।

शिक्षा विषय का उदाहरण देकर यह स्पष्ट हो जाएगा। अगर प्राइमरी शिक्षा का नियंत्रण व सुपरविजन ग्राम पंचायत को, मिडिल स्कूल शिक्षा तक का नियंत्रण एवं 'सुपरविजन' क्षेत्र पंचायत को और सीनियर सैकन्डरी स्कूल का नियंत्रण व सुपरविजन जिला पंचायत को सौंपा जाए तो यह कार्यों का उचित बंटवारा कहा जा सकेगा क्योंकि आवंटित कार्य इस स्तरों की पंचायतों की क्षमता के बाहर नहीं होगा। यहां महत्वपूर्ण बात यह है कि जब प्राइमरी, मिडिल व सीनियर सैकेन्डरी शिक्षा पंचायती राज अधिनियम के माध्यम से पंचायती राज के नियंत्रण में आ जाएगी तो शिक्षा संबंधी प्रावधानों को शिक्षा अधिनियम से हटाना पड़ेगा।

ग्राम सभा का सशक्तिकरण

ग्राम सभा सम्पूर्ण पंचायती राज व्यवस्था का दिल और दिमाग है। यह ग्रामीण विकास और सामाजिक न्याय की योजना बनाने और उसके क्रियान्वयन में गांव के प्रत्येक नागरिक की भागीदारी सुनिश्चित करती है। इसलिए इसको मजबूत करना आवश्यक है। उत्तरांचल की भौगोलिक स्थिति को देखते हुए हो सकता है कि एक ग्राम पंचायत में अनेक बस्तियां हों और वे भी दूर-दूर स्थित हों इसलिए हर बस्ती में ग्राम सभा की बैठक कराने का प्रावधान रखा जाए तो बेहतर रहेगा। ग्राम सभा की शक्तियों व अधिकारों के लिए यदि पंचायत उपलबंध (विस्तार अधिनियम) 1996 का विस्तार उत्तरांचल में किया जाए तो और भी बेहतर होगा क्योंकि इस अधिनियम में पांचवीं अनुसूची के अंतर्गत आने वाले क्षेत्रों में जल, जंगल, जमीन तथा खनिज पर नियंत्रण इसी संस्था को सौंपा गया है।

पंचायत कैडर की स्थापना

देश में अब तक लागू पंचायती राज व्यवस्था का अवलोकन करने से पता चलता है कि पंचायती राज को कारगर न होने देने में नौकरशाही की अहम भूमिका रही है। चूकि जिला व जिले से निचले स्तर के कर्मी पंचायतों के नियंत्रण में नहीं रहे इसलिए वे पंचायतों के प्रति उत्तरदायी न होकर अपने उच्च अधिकारियों के प्रति ही उत्तरदायी रहे हैं, क्योंकि ऐसा करने से ही उन्हें अपने कैरियर की सीढ़ी पर ऊपर चढ़ने की संभावना दिखाई देती थी। वास्तव में जिला व जिले से नीचे की नौकरशाही नहीं चाहती कि पंचायतें मजबूत हों। वे जानते हैं यदि पंचायतें मजबूत हो गईं तो पंचायत प्रतिनिधि सीधे राज्य स्तर के नेताओं व नौकरशाही से संबंध स्थापित कर उन्हें नजरअंदाज कर सकते हैं। इसलिए पंचायतों के लिए पंचायत कैडर का गठन करना जरूरी है। इसके लिए कोई ज्यादा व्यय नहीं होगा। जो-जो कार्य पंचायतों को हस्तांतरित किए जाएंगे उनसे संबंधित जिला व जिले से निचले स्तर के सभी अधिकारी और कर्मचारी पंचायतों के नियंत्रण में आ जाएंगे। उनके कार्य का वार्षिक मूल्यांकन, तबादला आदि सभी पंचायतों के नियंत्रण में आ जाएगा। प्रमोशन के बाद पंचायत कैडर के कर्मचारी/अधिकारी राज्य सरकार की सेवाओं में जा सकते हैं। डेपुटेशन पर राज्य व पंचायत कैडर के कर्मचारी व अधिकारी भी एक दूसरे के यहां आ जा सकते हैं।

वित्तीय आत्मनिर्भरता

पंचायतों को चाहे कितने ही अधिकार, शक्तियां व उत्तरदायित्व दे दिए जाएं तब तक उनका कोई महत्व नहीं जब तक कि उनको पूरा करने के लिए पर्याप्त साधन न हों। वित्त के महत्व को देखते हुए सरदार पटेल ने तो एक बार कहा था कि बिना वित्त के पंचायतों को उत्तरदायित्व देना मृत स्त्री का श्रृंगार करने के समान है। साधनों की समस्या का अलग से कोई बोझ पड़ने वाला नहीं है। सीधी सी बात यह है कि जो-जो कार्य पंचायतों को राज्य से हस्तांतरित होंगे उनसे संबंधित सभी पैसा स्वतः पंचायतों के नियंत्रण में चला जाएगा। इसके अलावा जब जल, जंगल व जमीन पंचायतों के हाथों में होंगे तो उनको पैसे की कमी नहीं रहेगी। यहां पर केरल राज्य का उदाहरण देना उचित प्रतीत होता है जहां पर राज्य ने अपने कुल बजट का 35-40 प्रतिशत परिव्यय पंचायतों को हस्तांतरित कर दिया है। इस तरह का प्रयास उत्तरांचल प्रदेश भी कर सकता है।

वित्त के मामले पर एक और बात आवश्यक है कि जब पंचायत अधिनियम बने तो उसमें राज्य वित्त आयोग के गठन, उसके सदस्यों की योग्यता का स्पष्ट जिक्र होना चाहिए क्योंकि कहीं ऐसा न हो कि राज्य के सरकारी अधिकारियों को ही अध्यक्ष व सदस्य बना दिया जाए और आयोग वही सुझाव दे जो सरकार चाहे। साथ ही राज्य वित्त आयोग द्वारा राज्य सरकार को प्रस्तुत रिपोर्ट का परीक्षण करके छह महीने के भीतर विधान मंडल में कार्यवाही रिपोर्ट प्रस्तुत करने का भी प्रावधान होना चाहिए।

जिला योजना समिति

संविधान की धारा 243 जेड डी के अनुसार प्रत्येक जिले में जिला योजना समिति गठित की जाएगी। इस समिति का कार्य ग्रामीण व नगरीय क्षेत्रों की योजनाओं को शामिल करके सम्पूर्ण जिले की योजना का प्रारूप बनाकर राज्य सरकार को प्रस्तुत करना है। संविधान की इस धारा में इस समिति का अध्यक्ष व सचिव कौन होगा यह स्पष्ट नहीं किया गया है। इसलिए विभिन्न राज्यों में राज्य सरकार के मंत्री को इसका अध्यक्ष बनाया गया है। कहीं-कहीं पर तो जिला अधिकारी को ही इसका अध्यक्ष बना दिया गया है। ऐसा करने से अन्ततः योजना बनाने संबंधी सम्पूर्ण सत्ता राज्य सरकार के हाथ में चली जाती है। इसलिए पंचायत अधिनियम में ही प्रावधान कर देना चाहिए कि जिला पंचायत का अध्यक्ष इसका अध्यक्ष होगा व जिलाधीश सचिव होगा। जिस जनपद में नगरीय जनसंख्या ग्रामीण जनसंख्या से अधिक है, वहां अवश्य नगरपालिका का अध्यक्ष इस समिति का अध्यक्ष हो सकता है।

ग्रामीण व नगरीय क्षेत्रों का समन्वय

73वें व 74वें संवधिान संशोधनों में जिला योजना समिति के गठन से पहले ग्रामीण व नगरीय क्षेत्रों के एकीकरण का प्रावधान नहीं है। सही मायनों में ग्रामीण क्षेत्र के आर्थिक विकास व सामाजिक न्याय की योजना नगरीय क्षेत्र को शामिल किए बिना बनाना उतनी प्रभावपूर्ण नहीं होगी जितनी होनी चाहिए। यही तर्क नगरीय क्षेत्र की योजना बनाने पर भी लागू होता है। इसलिए पंचायत अधिनियम व नगरपालिका अधिनियमों में प्रावधान होना चाहिए कि जिला स्तर से नीचे भी ग्रामीण व नगरीय निकाय अपने स्तर की योजना दोनों क्षेत्रों का एकीकरण करके बनाएं।

जन आन्दोलन की जरूरत

उपरोक्त सुझावों को कार्यान्वित करने के लिए जन आंदोलन जरूरी है। जन आंदोलन के बिना सत्ता और अधिकार हासिल करना सम्भव नहीं; क्योंकि राज्य में अभी जिन तबकों के हाथ में सत्ता है वे कभी नहीं चाहेंगे कि सत्ता उनके हाथों से निकल कर जन प्रतिनिधियों के हाथों में जाए। इसलिए लोक संगठनों, स्वैच्छिक संस्थाओं, विभिन्न एसोसिएशनों तथा बुद्धिजीवी वर्ग को जनमानस को जागरूक करने के लिए प्रयास करना होगा ताकि जनमानस विकेन्द्रीकृत सत्ता के लिए आवाज उठाकर कहे कि 'सिंहासन खाली करो जनता आती है।'

1661, लक्ष्मीबाई नगर, नई दिल्ली-110023

जनसंख्या विस्फोट के खतरे और राष्ट्रीय जनसंख्या नीति

प्रदीप पंत

लगभग आठ–दस वर्ष पूर्व स्विट्जरलैंड की यात्रा करते समय मैंने अपने से ही पूछा था कि यह देश अत्यंत सम्पन्न कैसे नज़र आ रहा है? यही प्रश्न जर्मनी, हालैंड, फ्रांस आदि का भ्रमण करते हुए मन में गूंजा था। हमारे देश में अपार प्राकृतिक सम्पदा है, साधन हैं, किन्तु फिर भी हम प्रगति के सोपान पर नीचे क्यों हैं? या यूं कहा जाए कि हमने प्रगति तो की है, लेकिन आज भी देश की अधिसंख्यक आबादी फटेहाल क्यों है?

जो प्रश्न यूरोप के देशों की यात्रा करते समय अपने से ही पूछा था, उसका उत्तर भारत के संदर्भ में मन में उठे प्रश्नों से ही मिल गया था कि हमारे पिछड़ेपन, अभावों और गरीबी का मुख्य कारण जनसंख्या–वृद्धि, बल्कि कहा जाए कि जनसंख्या–विस्फोट है। इसी कारण हम वहीं के वहीं हैं जहां आजादी के समय या उससे पूर्व थे। हमारे देश में हरित क्रांति हुई, कल कारखानों में लगातार उत्पादन हो रहा है, जमीन के नीचे से तेल से लेकर विभिन्न प्रकार की खनिज सम्पदा निरंतर निकाली जा रही है, बड़े से लेकर छोटे पुल, बांध बनते हैं, गांव–गांव में बिजली और सड़कें पहुंच गई हैं। प्राथमिक शालाओं से लेकर प्राथमिक चिकित्सा केन्द्र तक काम करने लगे हैं, लेकिन फिर भी आबादी की अपार भीड़ के बीच यह सब दिखाई नहीं देता। गरीबी की रेखा के नीचे रहने वालों की संख्या कुल आबादी के 35 प्रतिशत के आसपास बरकरार है। इसके अलावा शेष जनता भी कोई बहुत

बेतहाशा बढ़ती जनसंख्या अनेक समस्याओं को जन्म दे रही है

अच्छी हालत में है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। केवल हाल में सम्पन्नता की ओर बढ़ता मध्यवर्ग और उससे ऊपर का वर्ग ही एक खुशहाल जीवन जी रहा है और इस वर्ग के लोगों की संख्या देश की कुल आबादी के 10 प्रतिशत से अधिक नहीं होगी। सचमुच जनसंख्या विस्फोट भारत के लिए एक अभिशाप बन गया है।

हाल में सन् 2001 की जनगणना के अस्थाई आंकड़े आए हैं। जिनके अनुसार हमारी जनसंख्या 100 करोड़ को पार कर चुकी है। लेकिन फिलहाल हमारे पास सन् 1991 की जनगणना के अधिकृत आंकड़े हैं जो अपने आप में एक चिंताजनक स्थिति को हमारे समक्ष प्रस्तुत करते हैं। इन आंकड़ों के अनुसार 1991 तक भारत की जनसंख्या में 43.923 करोड़ पुरुष थे और 40.707 करोड़ स्त्रियां थीं। अर्थात् कुल आबादी थी 84.63 करोड़। इसके विपरीत पिछली शताब्दी की 1901 में की गई जनगणना के समय भारत की जनसंख्या केवल 23.40 करोड़ के लगभग थी। स्वतंत्रता–प्राप्ति के समय हुए देश के विभाजन से एक ओर हमारा क्षेत्रफल कम हो गया, दूसरी ओर जनसंख्या बेरोकटोक बढ़ती गई। हां, केवल 1911 से 1921 वाले दशक में जनसंख्या वृद्धि नहीं हुई क्योंकि 1911 के आंकड़े बताते हैं कि तब तक भारत की आबादी 25.20 करोड़ हो गई थी, जबकि 1921 के आंकड़ों के अनुसार इस दशक में जनसंख्या थोड़ी सी कम होकर 25.13 करोड़ पर आ गई।

जनसंख्या वृद्धि के संदर्भ में यह तथ्य ध्यान देने योग्य है कि इसका प्रभाव सबसे अधिक भूमि पर पड़ता है। अर्थात् यदि जनसंख्या बढ़ती है तो प्रति वर्ग किलोमीटर रहने वालों की संख्या भी बढ़ती है। जहां 1901 में प्रति वर्ग किलोमीटर में 77 व्यक्ति रहते थे, वहीं 1981 में इनकी संख्या प्रति वर्ग किलोमीटर 216 और 1991 में प्रति वर्ग किलोमीटर 267 हो गई है। जमीन पर इस तरह रहने वालों की संख्या बढ़ने का मतलब है खेती योग्य जमीन का कम होना और साथ ही कल–कारखाने लगाने, खानें खोदने, सड़कें बनाने और अन्य विकास कार्य करने के लिए स्थान की कमी पड़ना। इन सब गतिविधियों के अभाव का यह भी मतलब है कि लोगों के लिए रोजगार के अवसरों में कमी आना। अब तक की किसी भी जनसंख्या नीति में इस आशय का संदेश जन सामान्य तक, विशेषतः ग्रामीण जनता तक नहीं पहुंचा है जहां आज भी देश की कुल आबादी के 80 प्रतिशत से अधिक लोग विकट गरीबी में रहते हैं। इसके विपरीत यूरोप आदि के देशों में जनसंख्या वृद्धि को रोक कर जमीन पर घनत्व बढ़ने नहीं दिया गया और जमीन से जो फायदे उठाए जा सकते हैं, उठाए गए हैं। इसीलिए वहां जनसामान्य के लिए रोजगार के अवसरों की कमी नहीं है, बल्कि कई देशों में तो लोग जब चाहे नौकरी छोड़ते हैं और जब चाहे कर लेते हैं। यही नहीं, भूमि पर जनसंख्या घनत्व कम होने के कारण वहां कृषि कार्यों, औद्योगिक उत्पादनों, खनन कार्यों, आदि के लिए पर्याप्त जमीन होती है और परिणामस्वरूप इतना उत्पादन होता है कि देश की जनता एक सम्पन्न जीवन ही नहीं बिताती बल्कि निर्यात से अतिरिक्त पूंजी भी कमाती है।

> *हमारे देश में हरित क्रांति हुई, कल कारखानों में लगातार उत्पादन हो रहा है, जमीन के नीचे से तेल से लेकर विभिन्न प्रकार की खनिज सम्पदा निरंतर निकाली जा रही है, बड़े से लेकर छोटे पुल, बांध बनते हैं, गांव–गांव में बिजली और सड़कें पहुंच गई हैं। प्राथमिक शालाओं से लेकर प्राथमिक चिकित्सा केन्द्र तक काम करने लगे हैं, लेकिन फिर भी आबादी की अपार भीड़ के बीच यह सब दिखाई नहीं देता।*

हमारे देश में जनसंख्या विस्फोट का असर केवल आर्थिक गतिविधियों पर ही नहीं पड़ रहा, बल्कि इसका दुष्प्रभाव चतुर्दिक है। भावी पीढ़ी के लिए हम एक सुखद भविष्य का निर्माण नहीं कर पा रहे और सामाजिक संरचना के असंतुलित होने के खतरे बढ़ते जा रहे हैं। महिला और बाल विकास विभाग, भारत सरकार द्वारा 14 नवम्बर 1999 को 'विश्व बाल दिवस' के अवसर पर प्रकाशित पुस्तक 'चिल्ड्रन इन्डियाज़ स्ट्रैंग्थ' (बच्चे भारत की शक्ति) के अनुसार, लगभग 20 लाख नवजात शिशुओं की हर वर्ष मृत्यु हो जाती है और यह संख्या लगभग वही है जो 1960 में थी। यही नहीं मरने वाले नवजात शिशुओं में से करीब 70 प्रतिशत की मौत जन्म के पहले महीने में ही हो जाती है। जाहिर है कि जनसंख्या विस्फोट की तुलना में नवजात शिशुओं की देखभाल और पोषाहार की व्यवस्था बहुत कम है, क्योंकि इसी पुस्तिका के अनुसार, प्रति वर्ष जन्म लेने वाले 2.50 करोड़ बच्चों के लिए हमारे पास अस्पतालों में पर्याप्त पलंग तक नहीं हैं। यह भी कि 74 प्रतिशत बच्चों का जन्म अब भी घरों में ही होता है जहां जन्म लेते ही उनके मृत्यु की गोद में समा जाने की आशंका अधिक रहती है। यही नहीं, केवल 35 प्रतिशत शिशुओं को ही दाइयों की सहायता से जन्म लेने का अवसर मिलता है। यदि जनसंख्या विस्फोट न हो तो अस्पतालों में समस्त सुविधाएं सभी के लिए जुटाई जा सकती हैं, सभी नवजातों की उचित देखभाल हो सकती है, उन्हें और उनकी माताओं को पर्याप्त पोषाहार और अन्य आवश्यक सामग्री उपलब्ध हो सकती है।

कहना न होगा कि जो बच्चे किसी तरह जीवित रह जाते हैं, उन सब को हम आगे बढ़ने और मुकम्मिल नागरिक बनने के अवसर नहीं दे पा रहे हैं। साक्षरता के उदाहरण से इस बात को भली भांति समझा जा सकता है। महिला और बाल विकास विभाग की जिस पुस्तिका का यहां उल्लेख किया गया है, उसमें बताया गया है – 'यद्यपि साक्षरता दर 1961 की 24 प्रतिशत के मुकाबले दो गुनी से भी अधिक होकर 1997 में 62 प्रतिशत हो गई, किन्तु 1961 में देश में जितने निरक्षर व्यक्ति थे उनकी अपेक्षा आज 6 करोड़ अधिक निरक्षर व्यक्ति हैं।' इसका अर्थ यह हुआ कि साक्षरता का केवल प्रतिशत ही बढ़ा है, जबकि जनसंख्या में वृद्धि के संदर्भ में निरक्षरों की संख्या कम नहीं हुई है। पुस्तिका यह भी बताती है कि – 'केवल 60 प्रतिशत बच्चे ही पांचवी तक पहुंच पाते हैं और प्राथमिक विद्यालय की शिक्षा पूरी

करने वाले बच्चों में से बहुत से पढ़ और लिख भी नहीं पाते।' इससे स्पष्ट है कि शिक्षा प्रदान करना तो दूर रहा, साक्षरता अभियान के उद्देश्य भी पूरे नहीं हो पा रहे। पुस्तिका में आगे कहा गया है कि – 'कठिन परिस्थितियों में रहने वाले बच्चे लगातार अभावों और उपेक्षा का सामना करते रहते हैं। अनुमान है कि देश में 1 करोड़ 73 लाख 80 हजार रोजी–रोटी में जुटे हुए, 50 लाख गली सड़कों में भटकने वाले और 4 लाख बाल वेश्यावृत्ति में संलग्न बच्चे हैं। साथ ही प्रत्येक 10 में से एक बच्चा किसी एक या दूसरी तरह की विकलांगता का शिकार है, (जबकि बाल्यकाल की ऐसी 75 प्रतिशत विकलांगताओं को रोका जा सकता है) और बच्चों पर अपराध की घटनाएं बढ़ रही हैं। कहना न होगा कि स्थिति सचमुच ही हिला देने वाली है और इस पर नियंत्रण तभी पाया जा सकता है जबकि जनसंख्या विस्फोट को नियंत्रित किया जाए। इसके अभाव में न केवल हमारी आर्थिक प्रगति बाधित होगी, बल्कि भावी मानव संसाधनों से भी हम हाथ धो बैठेंगे, क्योंकि एक तरफ हमारे चारों ओर विकलांग पीढ़ी होगी और दूसरी ओर निरक्षर तथा बचपन से ही अभावों में रहने के कारण अपराध की गलियों में भटकने वाले व्यक्ति होंगे।

हमने जनसंख्या विस्फोट के कारण सामाजिक संरचना के असंतुलित होने के खतरों की भी चर्चा की थी। कारण कि भारत में न केवल जनसंख्या निर्बाध गति से बढ़ रही है, वरन् उसके अंतर्गत स्त्री–पुरुष अनुपात में भी असंतुलन आ रहा है। यह गौरतलब है कि 1901 में, जबकि भारत पराधीन था, शिक्षा प्रसार नहीं था, चिकित्सा सुविधाएं नहीं थीं, पौष्टिक–आहार की चेतना नहीं थी, लड़कियों के प्रति भेदभाव जैसी सामाजिक कुरीतियां थीं, 1000 पुरुषों के अनुपात में महिलाओं की संख्या 972 थी। दूसरी ओर जब आजादी के बाद के दशकों में हमारे सरकारी – गैरसरकारी दावे हैं कि साक्षरता और शिक्षा दर बढ़ी है, गावं–गांव में प्राथमिक चिकित्सा केन्द्र खोल दिए गए हैं, लोगों में पौष्टिक आहार की चेतना बढ़ गई है और सामाजिक कुरीतियों में कमी आई है, तब 1991 तक आते–आते हम देखते हैं कि 1000 पुरुषों के अनुपात में महिलाओं की संख्या बेतहाशा घटकर 927 पर आ गई है। पुरुषों के अनुपात में महिलाओं की संख्या के कम होने की स्थिति सामाजिक अराजकता को जन्म दे सकती है।

अतः आज जरूरत न केवल जनसंख्या विस्फोट को नियंत्रित करने की है, बल्कि साथ ही उस सामाजिक असंतुलन को भी रोकने की है जिसके अंतर्गत पुरुषों के मुकाबले महिलाओं की संख्या घट रही है और भावी पीढ़ियों के विकलांग, अभावग्रस्त, निरक्षर, बेरोजगार होने तथा अपराध की गलियों में भटकने की संभावनाएं बढ़ रही हैं। संभवतः इन तथा ऐसे ही मुद्दों और समस्याओं को ध्यान में रखते हुए भारत सरकार ने गत वर्ष यानी सन् 2000 में 'राष्ट्रीय जनसंख्या नीति' की घोषणा की जिसकी 'कार्य योजना' अत्यंत व्यापक है। इसके मुख्य बिन्दु इस प्रकार हैं–

- ग्राम स्तर पर सेवाएं एक जगह पर उपलब्ध कराना – इसके अंतर्गत एकीकृत बाल विकास योजना और इस योजना के तहत चल रही आंगनवाड़ियों की मुख्य भूमिका होगी क्योंकि ये आंगनवाड़ियां गांवों में मां और बच्चों की देखभाल, उनके स्वास्थ्य विकास आदि की प्रमुख केन्द्र हैं।
- बेहतर स्वास्थ्य और पोषण के लिए महिलाओं को अधिकार संपन्न बनाना – जैसाकि हम जानते हैं और इस लेख में बताया भी गया है कि भारत में बाल मृत्यु दर बहुत अधिक है, इसलिए आवश्यक है प्रजनन एवं बाल स्वास्थ्य कार्यक्रमों के अंतर्गत उपलब्ध उत्पादों और सेवाओं का लाभ उठाने के लिए महिलाओं और बच्चों हेतु अनुकूल माहौल बनाना। कार्य योजना के अंतर्गत उन्हें इन सुविधाओं का लाभ उठाने के अवसर दिए जाएंगे तथा स्वास्थ्य पैकेज विकसित किए जाएंगे।
- बाल स्वास्थ्य और जीवन रक्षा पर ध्यान देना – जन्म के पूर्व से लेकर बाल्यावस्था तक का समय ऐसा है जब बच्चों के स्वास्थ्य की ओर ध्यान दिया जाए तो आगे चलकर उनका जीवन सुरक्षित रहने की पूरी संभावना रहती है। इस उद्देश्य को कार्य योजना के तहत अमल में लाने का प्रस्ताव है।

उपर्युक्त के अतिरिक्त कार्य–योजना के अंतर्गत परिवार कल्याण, शहरी मलिन बस्तियों, आदिवासी, पर्वतीय आदि क्षेत्रों के लोगों, किशोरों आदि की ओर विशेष रूप से ध्यान केन्द्रित किया जाएगा। साथ ही सरकारी क्षेत्र द्वारा गैर–सरकारी क्षेत्र के साथ तालमेल बढ़ाया जाएगा, क्योंकि किसी लोकतांत्रिक व्यवस्था में जनसंख्या नीति जैसे व्यापक कार्यक्रम को केवल सरकारी स्तर पर निर्णय लेकर सफल नहीं बनाया जा सकता। इसी कारण कार्य योजना में गैर–सरकारी क्षेत्र यानी स्वयंसेवी संगठनों की भागीदारी को सुनिश्चित करने का विचार है। साथ ही उद्योग, चिकित्सा क्षेत्र, गर्भनिरोधक प्रौद्योगिकी तथा अनुसंधान पर तो जोर दिया ही गया है, शिक्षा और सूचना संप्रेषण पर भी ध्यान दिया गया है, क्योंकि जनसंख्या नियंत्रण की चेतना, शिक्षा प्रसार और सूचना संप्रेषण के बिना संभव नहीं है।

अब देखना है कि इस नीति और कार्य–योजना को कितनी सफलता मिलती है। जनसंख्या नीति के दस्तावेज में ठीक ही कहा गया है – 'यदि राष्ट्रीय जनसंख्या नीति, 2000 में दी गई कार्य–योजना का अनुसरण एक राष्ट्रीय आंदोलन के रूप में किया गया, तो सफलता प्राप्त होगी।'

सी 2/31, ईस्ट आफ कैलाश
नई दिल्ली–110065

पाठकों से

इस पत्रिका में *पाठकों के विचार* स्तंभ में पाठकगण ग्रामीण विकास के विभिन्न पहलुओं पर अथवा इस पत्रिका में प्रकाशित लेखों पर अपने विचार भेज सकते हैं। ये विचार दो सौ शब्दों से अधिक के न हों और सम्पादक, कुरुक्षेत्र, ग्रामीण विकास मंत्रालय कृषि भवन, नई दिल्ली–110001 के पते पर भेजे जाएं।

इसके लिए कोई पारिश्रमिक देय नहीं होगा परंतु उन पाठकों को पत्रिका की एक प्रति भेजी जाएगी जिनके विचार इस स्तंभ में प्रकाशित होंगे।

– सम्पादक

कैसे हो जनसंख्या नियंत्रण

डा. दौलतराज थानवी

युग–युगों से जनन प्रक्रिया के संबंध में यही रूमानी खयालात रहे हैं कि जन्म लेने वाले के एक मुंह और दो हाथ होते हैं इसलिए प्रत्येक प्राणी जन्म लेता है तो प्रकृति की शक्तियों के सहारे वह अपनी जरूरतें भी पूरी करने में सक्षम होता है। यह सच भी है कि प्रकृति से इतनी भोज्य सामग्री मिलती है जिससे संसार मे कोई भी भूखा नहीं रह सकता है। परन्तु संग्रह वृत्ति और नव तकनीक से आज भी संसार में भुखमरी है। जनसंख्या वृद्धि को आर्थिक विकास का बाधक माना जाने लगा है। भारत में तो जनसंख्या वृद्धि से गरीबी की रेखा के नीचे जीवन जीने वाले परिवारों की संख्या प्रतिवर्ष बढ़ रही है। इस पर भी उत्पादकता के धीमे और कमजोर साधन और मानव संसाधन विकास के सूचकों पर मानवीय शक्ति का जागरण नहीं के बराबर है। इससे जनसंख्या नियंत्रण की समस्या एक भयंकर चुनौती सिद्ध हो रही है।

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ अर्थात् 1901 में भारत की जनसंख्या मात्र 23 करोड़ थी जो आज 21वीं शताब्दी के प्रारम्भ में ही 100 करोड़ से अधिक हो गई है। विश्व जनसंख्या शोध ब्यूरो के अनुमान से आगामी दस वर्षों में भारत की जनसंख्या 118 करोड़ से भी ज्यादा हो जाएगी। इसी बढ़ती जनसंख्या के साथ न तो भूमि का क्षेत्रफल बढ़ेगा और न ही उत्पादकता में उतनी वृद्धि होगी। उत्पादन कुशलता जिसमें साक्षरता, शिक्षा और प्रौद्योगिकी दक्षता को सम्मिलित करें तो भारत में साक्षरता का प्रतिशत भी मात्र 31 प्रतिशत है और 55 प्रतिशत स्कूल जाने वाले आयु वर्ग के बालक–बालिकाएं गलियों में ही घूम रहे हैं। ऐसी दशा में जनसंख्या वृद्धि के साथ मानव संसाधन विकसित कैसे होगा? यही वह समस्या है जिसके लिए सोचना जरूरी है।

ठोस उपाय जरूरी

दुनिया भर में सामाजिक विश्लेषणों और जनसंख्या के आकड़ों से यह तथ्य सामने

उत्पादन कुशलता जिसमें साक्षरता, शिक्षा और प्रौद्योगिकी दक्षता को सम्मिलित करें तो भारत में साक्षरता का प्रतिशत भी मात्र 31 प्रतिशत है और 55 प्रतिशत स्कूल जाने वाले आयु वर्ग के बालक– बालिकाएं गलियों में ही घूम रहे हैं। ऐसी दशा में जनसंख्या वृद्धि के साथ मानव संसाधन विकसित कैसे होगा?

आया है कि भारत में जनसंख्या नियंत्रण के तौर–तरीके कारगर नहीं हो पा रहे हैं। जन–शिक्षा और प्रचार की विधियों से वह वातावरण और समझ नहीं बन पाई है कि लोग सीमित परिवार की संकल्पना को कारगर ढंग से समझ सकें और अपनाएं। इस दृष्टि से सरकारी तौर पर 1975 के बाद कोई भी राजनीतिक दल बाध्यता की विधि नहीं अपनाता है। उसे डर है कि सरकार चली जाएगी। जनता केवल रेडियो, टी.वी. तथा गांव–गांव में पोस्टर बाजी से समझ जाएगी ऐसा माना जाता है। मात्र गर्भ निरोधक कैम्प पर चार–पांच नसबंदी करना और निरोध बांटना पर्याप्त नहीं है। नदी में उफनता जोर बालू रेत से नहीं रोका जाता, रास्ते में बांध बनाकर नहरों से पानी फैलाने का कार्य करना होता है। इसी तरह लोगों को समझाने के साथ दण्डात्मक कार्यवाही भी जरूरी है। वर्तमान में सरकार ने पंचायत राज चुनावों में प्रतिभागियों पर नकारात्मक प्रतिबंध लगाए हैं और सरकारी नौकरी तथा पदोन्नति पर भी पाबन्दी लगाई है। इनके साथ यह जरूरी है कि सीमित परिवार की परिभाषा में नहीं आने वालों को राशन तथा अन्य सुविधाओं से वंचित किया जाए। गरीबी की रेखा से नीचे जीवन जीने वाले परिवारों को बाध्य किया जाए कि वे सीमित परिवार की परिधि में रहें और जो बच्चों को स्कूल नहीं भेजते उनके परिवारों को भी दण्डित किया जाए।

बाध्यकारी साधनों के प्रयोग से यदि सरकारें डरती रहीं तो बरसात की बाढ़ में डूबने के अलावा कोई विकल्प नहीं बचेगा। राजनीतिक जोखिम न समझ कर राजनीतिक अनिवार्यता समझ सख्ती से जनसंख्या नियंत्रण के उपाय काम में लें जिससे गरीबी और बेरोजगारी तो नहीं मिटेगी पर सिमटने जरूर लगेगी और शिक्षा तथा प्रौद्योगिकी कुशलता से मानव

संसाधन विकास का मार्ग भी प्रशस्त होगा। यह सभी कर्म करने से होगा।

महिला शिक्षा महत्वपूर्ण कदम

करना क्या है? यह भी स्पष्ट होना चाहिए। सोच समझकर संकल्पनाओं को व्यावहारिक रूप देना जरूरी है। परिवार कल्याण के लिए केवल चिकित्सा विभाग पर निर्भर नहीं रहा जाए। इसकी प्रबंधकता पर भी विचार करना आवश्यक है। प्रबन्धकता में सर्वप्रथम तो महिला शिक्षा पर जोर दिया जाए। क्योंकि विभिन्न सामाजिक वैज्ञानिकों ने अपने सर्वेक्षणात्मक अध्ययन से इसी तथ्य पर बल दिया है कि महिलाओं के शिक्षा स्तर में वृद्धि के साथ कुल प्रजनन दर में कमी होती है। कम से कम सार्वभौम सार्वजनीक प्राथमिक शिक्षा के कार्यक्रम में प्रत्येक बालिका को जोड़ा जाए। हो सके तो बालिकाओं को मिडिल स्कूली शिक्षा प्रदान कराने का लक्ष्य किया जाए तो जनसंख्या वृद्धि की बाढ़ को काफी हद तक नियंत्रित किया जा सकता है। इसके साथ ही वर्तमान की 18 वर्ष की वैवाहिक आयु सीमा को 21 वर्ष की सीमा तक बढ़ाया जाए। इससे महिला शिक्षा की कार्य सहभागिता बढ़ेगी तो प्रजनन दर में भी कमी होगी। महिला शिक्षा के कार्यक्रम को उत्साह मिलेगा और जन्मदर और शिशु मृत्यु दर में भी कमी आ सकेगी।

विद्यालयों में यौन तथा प्रजनन संबंधित शिक्षा भी प्रारम्भ करनी चाहिए। स्कूली विद्यार्थी जब प्रजनन योग्य आयु में प्रवेश करेंगे तो प्रजनन अनुशासन सीखेंगे। इससे सीमित परिवार के महत्व को वे समझ कर जीवन–यापन कर सकेंगे। इसके साथ–साथ उपभोक्ता उन्मुख कार्यक्रम भी चलाया जाए। इन कार्यक्रमों में प्रत्येक युवा दम्पत्ति को परिवार कल्याण कार्यक्रम के लिए उन्हें अपनी रुचि तथा आवश्यकतानुसार उपयोग में लेने वाले उपकरण दिए जाएं। परिवार कल्याण के लिए मात्र नसबंदी ही एकमात्र उद्देश्य नहीं रहना चाहिए। बचाव और नियंत्रण ही कारगर उपाय के रूप में समझाए जाएं।

इन सभी कार्यों के साथ प्रत्येक स्तर पर चयनित राजनेता तथा सामाजिक कार्यकर्त्ताओं को भी परिवार कल्याण कार्यक्रमों पर काम करना चाहिए जिससे सामाजिक जनसंख्या नियंत्रण के लक्ष्य की पूर्ति संभव हो सकती है। राजनीतिक, प्रशासनिक और बौद्धिक क्षमताओं को काम में लेकर यदि जनप्रतिनिधि मजबूत इच्छा शक्ति से समुदाय को सकारात्मक रूप से जागरूक करने में लग जाएं तो जनसंख्या नियंत्रण संभव हो सकता है।

पूर्व प्रधानाचार्य
हाथी चौक, जालप मोहल्ला,
जोधपुर (राजस्थान)

(पृष्ठ 4 का शेष) **पंचायतों में महिलाओं की.....**

आर्थिक गतिविधियों में कमी आई है।

काफी संख्या में पुरुष प्रतिनिधियों ने बताया कि महिलाएं कभी–कभी उचित बात पर भी सहमत नहीं होती हैं। जिससे अनावश्यक परेशानी पैदा हो जाती है। कोई भी महिला इससे सहमत नहीं थी।

एक चौथाई से अधिक पुरुषों एवं कर्मचारियों ने बताया कि महिलाओं के पंचायतों में चुने जाने से पंचायतों में विवाद बढ़े हैं। उनका कहना था कि जब महिलाओं के साथ उनके परिवार का कोई सदस्य पंचायत कार्य में हस्तक्षेप करता है तो अन्य प्रतिनिधि इसका विरोध करते हैं जिससे कभी–कभी विवाद हो जाता है। कुछ पुरुषों का विचार था कि महिलाओं की भागीदारी से पुरुषों के अवसरों में कमी आई है।

यहां पर एक ध्यानाकर्षक बात यह भी है कि आधी महिलाओं एवं सरकारी कर्मचारियों ने बताया कि पंचायतों में महिलाओं की भागीदारी से उन्हें कोई कठिनाई महसूस नहीं हो रही है। कम पुरुषों का ऐसा विचार था अर्थात्, अधिकांश पुरुषों को महिलाओं की भागीदारी से कोई न कोई हानि महसूस हुई।

निष्कर्ष

1. यह सही है कि अभी ग्रामीण महिलाओं को प्रभावशाली भूमिका निभाने लायक बनने में समय लगेगा किन्तु चिन्ता की बात यह है कि पुरुषों का दृष्टिकोण सकारात्मक नहीं है जिससे महिलाओं के सशक्तिकरण की प्रक्रिया की राह आसान न होकर पथरीली और लम्बी साबित होगी।
2. महिलाओं में आत्मविश्वास और जागरूकता के लक्षण अवश्य दिखाई दिए किन्तु अभी भी महिलाओं का एक तबका वर्षों तक पुरुष प्रभुत्व तले दबे रहने के कारण आत्म–विश्वास के साथ इस नए अवसर की चुनौतियों के अनुरूप नहीं उभर पा रहा है। इसके लिए विशेष जागरूकता अभियान चलाने होंगे क्योंकि अधिकतर निर्वाचित महिलाएं अनपढ़ हैं और गरीब तबके की हैं।
3. महिलाओं की भागीदारी से ग्रामीण समाज में महिला–पुरुष सम्बन्धी विवाद बढ़ते प्रतीत होते हैं। इसे यदि सामाजिक विकास के मनोविज्ञान के रूप में देखें तो यह सकारात्मक प्रतीत होता है क्योंकि इससे महिलाओं में आ रही जागृति के संकेत मिलते हैं।
4. पंचायतों में महिलाओं की सक्रिय भागीदारी को उनकी आर्थिक स्थिति से अलग करके नहीं देखा जा सकता। गरीब, मजदूरी करके पेट पालने वाले परिवारों की महिलाओं से काम छोड़कर पंचायतों में प्रभावशाली भूमिका की अपेक्षा करना बेमानी होगी। अतः उनके आर्थिक विकास हेतु भी विशेष प्रयास करने होंगे।

वैज्ञानिक, राष्ट्रीय मत्स्य आनुवांशिक संसाधन ब्यूरो, कैनाल रिंग रोड, पो. आ. दिलकुशा, लखनऊ–226002

कहानी

क्षितिज की ओर

साबिर हुसैन

अथाह सागर–सी हरहराती भीड़ में अनायास ही मेरी दृष्टि एक गरिमामय व्यक्तित्व वाली औरत पर अटक कर रह गई, जो लोगों की भीड़ से घिरी हुई थी। सहसा मुझे विश्वास नहीं हुआ कि गांव की नीमा मुझे इस रूप में मिलेगी। मैं तेजी से आगे बढ़ा, लेकिन तब तक नीमा एक कार में बैठ चुकी थी जिसके आगे *नीलिमा देवी विधायक* की प्लेट लगी हुई थी। नीमा कभी सत्ता में शामिल होगी, इसकी तो कभी मैंने क्या, गांव के किसी व्यक्ति ने भी कल्पना नहीं की थी। हां, फूला चाची का सपना जरूर था जिससे कभी किसी ने गंभीरता से नहीं लिया था। नीमा को देखकर अंतर का कोई कोना खुरच–सा गया, किन्तु उसमें कोई टीस जैसे अनुभूति भी नहीं हुई। नीमा की कार धीरे–धीरे भीड़ में समाकर ओझल हो गई।

आज मुझे एहसास हुआ कि फूला चाची के सानिध्य ने नीमा को नीलिमा देवी, विधायक बना दिया। फूला चाची को लड़कियां प्रिय थीं। वे अक्सर कहा करती थीं कि आज नहीं तो कल, औरत भी जागरूक होगी, वह भी इन चाहरदीवारियों से बाहर स्वतंत्र रूप से विचरण करेगी। गांव के लड़के–लड़कियां फूला चाची के आंगन में खेला करते। वह लड़कियों के साथ बच्ची बन कर गुड्डे–गुड़ियां खेलने लगतीं। वह लड़कियों को गुड्डे–गुड़ियां बनाकर देतीं। नीमा कुछ अधिक ही उनसे जुड़ी रहती।

फूला चाची हमारे ही पड़ोस में रहती थीं। उम्र में तो दादी ही थीं, लेकिन पता नहीं कब लोगों ने उन्हें चाची कहना शुरू कर दिया। रघु चाचा भले ही अधिक न बोलें, लेकिन फूला चाची हर जगह उपस्थित रहतीं। मां ने बताया था कि फूला चाची के तीन संतानें हुई थीं, दो लड़कियां और एक लड़का। पहले उनकी लड़की हुई थी और लड़की जनमने के कारण अनायास ही वह परिवार में उपेक्षित हो गई थीं। लड़की एक साल की हो गई थी, वह अक्सर रोती रहती थी, जिससे उसकी दादी चिढ़ जाती थीं। डाक्टर ने बताया था कि वह बीमार है। फूला चाची की इच्छा थी कि उसे शहर के अच्छे डाक्टर को दिखा लाया जाए, लेकिन सास ने कह दिया कि इसे गांव के डाकटर से पुड़िया ला दो। गांव के डाक्टर की पुड़िया खाते–खाते एक दिन लड़की कभी न रोने के लिए चुप हो गई थी। बच्ची की मृत्यु पर सिर्फ फूला चाची ही रोई थी, चाचा तटस्थ थे। उनमें इतना साहस भी नहीं था कि दो आंसू गिराकर मां की प्रताड़ना सहते। दूसरी बार भी फूला चाची ने लड़की को जन्म दिया था और वह पांच दिन में ही फूला चाची को रोता छोड़ कर चली गई थी, उसे टिटनेस हो गई थी। लड़कियों की मौत पर फूला चाची की सास ने राहत की सांस ली थी। दो साल बाद फूला चाची के आंगन में पुत्र आया था। उसका स्वागत बड़ी धूम–धाम से किया गया था, लेकिन वह भी मात्र सात माह का जीवन लेकर आया था और पूरे घर को रोता–बिलखता छोड़कर चला गया था। उसके बाद फूला चाची की सास एक पोते का मुंह देखने की इच्छा लिए हुए स्वर्ग सिधार गई। इसके बाद फूला चाची पूरे गांव की चाची हो गई। वह गांव के हर परिवार के सुख–दुख में शामिल होतीं, पूरे गांव के बच्चे उनके अपने हो गए।

कहां क्या होना चाहिए, फूला चाची की सलाह हर एक को बिना मांगे मिल जाती। मोहना अपनी पत्नी को उसके काले रंग के कारण छोड़ देना चाहता था और एक दिन मोहना फूला चाची को मिल गया था, फूला चाची ने उसे जाने क्या समझाया कि उसने अपनी पत्नी को छोड़ने का विचार ही नहीं त्याग दिया, बल्कि पुत्री के जन्म पर उसने वैसी ही दावत की जैसे लोग पुत्र–जन्म पर करते हैं। धीरे–धीरे फूला चाची हर काम में सलाह देने लगी थीं और लोग उनकी सलाह मानने लगे थे। कई बार फूला चाची ने गांव के लड़कों को प्रधानी के चुनाव में खड़े होकर सोबरन सिंह की चुनौती देने के लिए प्रोत्साहित किया, लेकिन उनके घरवालों ने कभी डांट–डपटकर तो कभी रो–धो कर राजनीति से दूर कर दिया। सोबरन सिंह के किसी गलत निर्णय का विरोध फूला चाची ने ही किया, लेकिन उनके विरोध पर सोबरन सिंह हंस देता और फूला चाची बड़बड़ाती चली जाती। अक्सर वह गांव वालों को उनकी कायरता के लिए धिक्कारने लगती और लोग सिर झुकाये इधर–उधर चले जाते।

नीमा के बारे में शायद मैंने ही अधिक सोचा भी था। वह पड़ोस में ही अपने मां–बाप और दो भाइयों के साथ रहती थी। उसका पूरा परिवार एक टुकड़े जमीन और पूरे परिवार की मजदूरी पर आश्रित था। नीमा के मां–बाप बेटों को तो पढ़ा नहीं सके थे, लेकिन फूला चाची के दबाव के कारण नीमा का नाम स्कूल में लिखा दिया गया था। अन्य गांवों की तरह ही मेरा गांव था जहां पहले अगर जमींदार का निरंकुश शासन था तो अब प्रधान का। सोबरन सिंह भी अपने जमींदार पिता के समान गांव पर दबदबा बनाए हुए थे। प्रधानी के चुनाव में भी उन्हीं का चमचा उनके विरोध में प्रत्याशी बनता जो स्वयं सोबरन सिंह के लिए वोट मांगता घूमता और सोबरन सिंह सीधे मुकाबले में भारी अंतर से जीतकर प्रधान बन जाते। उनकी प्रधानी जमींदारी का ही संशोधित रूप था। यदि सोबरन सिंह की फसल कटनी होती तो पूरा गांव अपना काम बंद कर उनके खेतों में फसल काटने पहुंच जाता। ऐसा न करने वाले के घर और खलिहान में आग लग जाती। नीमा का बापू बीमार था और दोनों लड़के शहर गए हुए थे। तभी सोबरन सिंह के नौकर ने उनसे कहा था कि प्रधानजी के खेत में घास बहुत हो गई है, जरा वह निरई कर दे। नीमा के बाप ने हाथ जोड़कर कह दिया था कि प्रधानजी से कह देना कि उसकी तबियत ठीक नहीं है।

नौकर ने जब सोबरन सिंह को बताया था कि नीमा के बापू ने इंकार कर दिया है तो उसने इसे अपना अपमान ही माना था। सोबरन सिंह लठैतों के साथ उनके घर आया था और लठैतों ने नीमा के बापू को उसी के दरवाजे पर पीटा था। नीमा की मां को बात–बात पर पीटने वाला उसका बाबू सोबरन सिंह का जरा भी विरोध नहीं कर सका था। बस रोते–गिड़गिड़ाते हुए पिटता रहा था। उस

समय नीमा छोटी थी, किंतु समझदार थी। उसके सामने उसकी मां सोबरन सिंह के पैर पकड़ कर माफी मांगती रही थी। गांव के बहुत से लोग वहां दर्शक के रूप में उपस्थित थे, लेकिन किसी में इतना साहस नहीं था कि वह नीमा के बापू को बचा लेता और न ही सोबरन सिंह के विरुद्ध कोई सुगबुगाइट ही हुई थी। सोबरन सिंह सजा देकर चला गया था। फूला चाची ने सोबरन सिंह को खूब बुरा भला कहा था और गांव वालों को धिक्कारा था। तब कुछ लोगों ने नीमा के बापू को उठा कर अंदर लिटा दिया था। शायद उसी दिन नीमा ने नीलिमा बनने का संकल्प लिया था।

"नीमा, तेरे बापू को प्रधान ने बहुत मारा," मैंने धीरे से नीमा से कहा था।

"आज उसे पता चला होगा कि कितना दर्द होता है, वह रोज अम्मा को मारता है।" नीमा ने कहा था।

अक्सर ही नीमा का बापू उसकी मां को पीटता तो उसकी मां रोती हुई मेरे घर आ जाती। अम्मा उसे ढाढ़स बंधाते हुए नीमा के बापू को बुरा–भला कहती रहती, जबकि वह भी जानती थी कि औरत की नियति यही है, उसे किसी ने किसी खूंटे से बंधना ही है; क्योंकि वह कुछ कर ही नहीं सकती। लेकिन आज नीमा को देखकर महसूस होने लगा कि अब खूंटे पर बंधी औरत की छवि टूटने लगी है। अब वह अपने वास्तविक रूप से स्थापित हो रही है।

नीमा मुझसे एक कक्षा पीछे ही थी। उसकी शिक्षा को मैंने क्या, किसी ने भी कभी गंभीरता से नहीं लिया था। मैं नीमा को पंसद करता था, अक्सर उसके साथ रहता था, लेकिन इसे प्रेम का नाम नहीं दिया जा सकता। प्रेम की परिभाषा से अनभिज्ञ हम किशोरावस्था में प्रवेश कर रहे थे।

नीमा अनायास ही मेरे मस्तिष्क पर प्रभावी हो गई थी। मैं अवसर पाते ही फूला चाची के घर पहुंच जाता, जहां नीमा भी अन्य लड़कियों की तरह गुड्डे–गुड़िया का ब्याह रचा रही होती। जाने कैसे, फूला चाची ने मेरे अंतर को पढ़ लिया था और एक दिन उन्होंने नीमा से कह दिया था "नीमा, अब तू गुड्डे–गुड़िया खेलना बन्द कर तेरा गुड्डा तो खुद आ गया है।

फूला चाची की बात सुनकर नीमा शरमा गई थी और मैं चुपचाप वहां से चला आया था। उस समय मेरा दिल बुरी तरह धड़क रहा था। नीमा अक्सर फूला चाची के साथ ही रहती और उसने फूला चाची से गलत का विरोध करना ही नहीं सीखा, बल्कि इसे अपना स्वभाव बना लिया था। मुखर होती नीमा से मैं अनायास दूर होता चला गया था। एक दिन जब नीमा के भाई को सोबरन सिंह ने मारा था, उसी दिन नीमा सोबरन के विरुद्ध उठ खड़ी हुई थी, कितने ही प्रार्थना–पत्र अधिकारियों को स्वयं नीमा ने दिए थे और उनकी जांचों से सोबरन सिंह परेशान होने लगा था। पिता गांव के आतंक से मुक्ति हेतु गांव से पलायन कर शहर में बस गए थे। गांव की जमीन चाचा ने संभाल ली थीं। चाचा के दबंग स्वभाव के कारण गांव के लोग उनसे बच कर ही रहते।

एक–दो बार मैं गांव गया था। वहां हलचल थी और नीमा का बढ़ता प्रभाव था। मैं कायरों की तरह कछुवे के समान अपने ही खोल में दुबक कर रह गया था। नीमा और बिरजू अनायास ही संघर्ष में साथी बन गए थे। मैंने महसूस किया था कि कि नीमा का प्रभाव बढ़ता जा रहा है। एक दिन चाचा ने बताया था कि नीमा ने बिरजू मास्टर से शादी कर ली। मैंने इसे एक सूचना की तरह सुना था। मैंने उसका जो रेखाचित्र अपने मानस–पटल पर बनाया था उसके अनुसार वह गोबर–कूड़ा उठाती, खेतों से चारा लाती और पति की मार–झिड़कियां सहती औरत थी और ऐसी औरत आसानी से भुला दी जाती है। अपनी नियति को रोती औरत के अनेक रूप मैं बचपन से देखता चला आ रहा था। औरतें पिटतीं, रोतीं और अपना भाग्य मानकर चुप हो जातीं।

"अरे महेन्द्र, तुम कहां?"

मेरी तंद्रा भंग हो गई। मैंने देखा सामने चाचा खड़े थे।

"अरे आप कब आए?" मैंने आश्चर्य से पूछा।

"अभी थोड़ी देर पहले आया था, नीलिमा जी से मिलना था।" चाचा बोले।

बात–बात पर व्यंग्य करने वाले चाचा के लिए भी नीमा अब नीलिमा जी बन चुकी हैं।

"नीमा तो अब विधायक बन गई।" मैं बोला और जाती हुई टैक्सी को रोक कर कर उसमें चाचा के साथ बैठ गया।

"वह इसी चुनाव में जीतकर विधायक बन गई और सोबरन अब प्रधान भी नहीं रहा।" चाचा ने बताया।

नीमा के बारे में कुछ अधिक जानने की इच्छा लगातार बलवती होती जा रही थी। जाने क्यों मैं अतीत में नीमा को खोजने लगा था। अतीत में हमारा बचपन था, जब हम दोनों साथ–साथ खेला करते थे। जो हो रहा है होने दो, की सोच के साथ हम सभी जी रहे थे, जबकि फूला चाची इस सन्नाटे को तोड़ना चाहती थीं।

टैक्सी दरवाजे पर रुक गई थी। चाचा अंदर चले गए, मैं टैक्सीवाले को पैसे देकर अंदर आ गया। चाचा सोफे पर बैठे इधर–उधर मेरे घर को देख रहे थे। घर की हर वस्तु हमारी संपन्नता की द्योतक थी।

कुछ ही देर में नीलू चाय–नाश्ता रख गई थी। मैं चाचा के साथ नाश्ता करने लगा।

"फूला चाची कैसी हैं?" चाय पीते हुए मैंने पूछा। शहर की व्यस्तता में मैं उन्हें भूल ही गया था। नीमा को न देखता तो संभवतः उनकी याद ही न आती।

"फूला चाची तो दो साल पहले मर गई।"

"कैसे? क्या बीमार थीं?" मैंने पूछा।

"नहीं, गांव में अलताफ मियां और जगता में झगड़ा हो गया था, लाठियां निकल आई थीं। बीच–बचाव करती फूला चाची को लाठी लग गई थी, जिससे वह गंभीर रूप से घायल हो गई थीं। सोबरन सिंह ने पुलिस बुला ली थी, फूला चाची ने बयान दिया था कि वह गिर पड़ी थी। बूढ़ी हड्डियां ज्यादा दिन न चल सकीं और उन्होंने देह त्याग दी।" चाचा ने बताया और खामोश हो गए।

अनायास ही हमारे मध्य बोझिल सन्नाटा पसर गया।

"नीमा विधायक कैसे बन गई?" मैंने मौन तोड़ा।

"फूला चाची के दबाव में नीमा पढ़ने जाने लगी थी। वह अक्सर फूला चाची के साथ रहती। फूला चाची ही उसे जीवन में सक्रिय रहने की प्रेरणा देती रहतीं। सच तो यह है कि फूला चाची में समय को समझने की अदभुत क्षमता थी। अक्सर फूला चाची कहती थीं कि अब औरत चाहरदीवारी में बंद रहने वाली ही औरत नहीं रह गई है। नीमा कुछ मुखर हो गई थी। उसने सोबरन सिंह का विरोध करना शुरू कर दिया था। जिन अधिकारियों से मिलने में गांव के लोग घबराते थे, उनसे नीमा आसानी से मिल लेती थी, धीरे–धीरे वह लोकप्रिय होती गई। पार्टी में शामिल हुई तो तेज स्वभाव के कारण वह आगे बढ़ती चली गई। पार्टी के टिकट पर वह चुनाव लड़ी तो जीत गई।" चाचा ने बताया।

"आप नीमा से मिलने आए थे।" मैं बोला।

"हां, अभी उसके आफिस चलना है, भीड़ में तो बात ही न हो सकी", चाचा बोले। अब उन्हें जाने की जल्दी होने लगी थी।

"चलिए, मैं भी चलता हूं, मोटरसाइकिल निकाल लूं।" मैं बोला।

चाचा बैठक से बाहर आ गए थे। मैं मोटर साइकिल लेकर आ गया, चाचा पीछे बैठ गए। मैंने मोटरसाइकिल विधायक निवास की ओर मोड़ दी। वैसे मुझे कुछ घबराहट भी महसूस हो रही थी। मुझे मालूम है चाचा अक्सर नीमा पर व्यंग्य किया करते थे कि जिसे नाक पोंछना नहीं आता, वह नेता बनेगी! ब्याह होते ही खसम के चार डंडे पड़ते ही सब भूल जाएगी। कई बार चाचा ने नीमा को अपमानित करने का प्रयास किया था।

"चाचा, नीमा आपका काम कर देगी?" अंततः मैंने चाचा से पूछ ही लिया।

"बेटा, नीमा हमारे आंगन की बेटी है, मैं उसे पहचानता हूं।" चाचा बोले लेकिन उनका स्वर धीमा था, शायद वह स्वयं अपने कथन से संतुष्ट नहीं थे।

रास्ते भर मैं खामोश ही रहा। मुझे मालूम है अशोक की दरोगा से कुछ बातचीत हो गई थी, दरोगा ने खुले शब्दों में कह दिया था कि वह उसे दस हजार रुपया दे, वरना वह अशोक का डकैती में फंसा देगा।

कुछ ही देर में हम नीमा के आफिस में थे। चाचा को देखते ही नीमा ने बड़े उत्साह से स्वागत किया। "आइए चाचा जी, मैं तो सोच रही थी कि आप नाराज हो गए। भीड़ में खड़े–खड़े बात करना भी तो अच्छा नहीं लगता।"

मैं चाचा के पास ही बैठ गया।

"आप महेन्द्रजी ही हैं न!" मुझे देखकर मुस्कराती हुई नीमा बोली।

"हां, नीलिमा जी, आपने ठीक पहचाना।" मैं धीरे से बोला।

"मैं तो अभी नीमा ही हूं। आप मुझे दूर किए दे रहे हैं।" नीमा हंस कर बोली।

मैं खामोश ही रहा। चाचा नीमा को बता रहे थे कि नया दरोगा कैसे लोगों को परेशान कर रहा है। वह पैसा वसूलने के लिए लोगों को परेशान करता है।

"चाचा जी, मुझे मालूम है और यह भी मालूम है कि वह दरोगा अशोक भइया को डकैती में फंसाने की धमकी दे रहा है, मैंने इस संबंध में बात कर ली है। उस दरोगा का ट्रांसफर एस.पी. के पेशकार के रूप में हो चुका है।" नीमा बोली।

"अच्छा अब चलता हूं बेटी!" उठते हुए चाचा बोले।

"ऐसे कैसे चले जाएंगे, एक कप चाय तो पीनी ही पड़ेगी", नीमा बोली।

चाचा फिर बैठ गए। नौकर चाय–नाश्ता रख गया था।

"महेन्द्र जी, चाय पीजिए", नीमा बोली।

मैंने चुपचाप चाय का कप उठा लिया। आज अगर फूला चाची होती तो वह सचमुच बहुत खुश होती। उन्हीं के संस्कारों ने नीमा को नीलिमा देवी विधायक बनाया है। मुझे लगा औरत अपनी वह शक्ति पहचानने लगी है जिससे वह पूज्यनीय थी, उसने अपने पंख खोल कर नए क्षितिज की ओर उड़ने के लिए तैयारी शुरू कर दी है। वह अपने अस्तित्व की पहचान कराएगी।

चाय पीकर मैं बाहर आ गया, जहां नीमा से मिलकर काम कराने वालों की भीड़ लगी हुई थी।

अभिव्यक्ति,
पलियाकलां (खिरी)
पिन–262902

स्वैच्छिक संगठन : ग्रामीण विकास के सर्वोत्तम अभिकर्ता

राजन मिश्रा

पिछले अनेक वर्षों के दौरान नीति–निर्धारकों, योजनाकारों तथा क्रियान्वयन करने वालों का ध्यान भारत में ग्रामीण विकास पर गया है। परिणामस्वरूप सरकार ने दुग्धशाला विकास, मत्स्य–पालन, रेशम कीट–पालन, हस्तकला और खादी और ग्रामोद्योग आयोग के माध्यम से ग्रामीण औद्योगीकरण की अनेक योजनाओं का आयोजन किया है। इसके अतिरिक्त और भी योजनाएं जैसे समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम (आई.आर.डी.पी.) ग्रामीण युवा स्वरोजगार प्रशिक्षण योजना (ट्रायसेम), ग्रामीण महिला एवं बाल विकास योजना (डवाकरा), जवाहर रोजगार योजना आदि की अधिसूचना ग्रामीण गरीबी निवारण हेतु की गई है लेकिन इन कार्यक्रमों में सन्निहित विशेष उद्देश्य पूरे नहीं हो सके क्योंकि क्रियान्वयन अक्षम रहा। इन कार्यों में जनता की सक्रिय भागीदारी पर इधर काफी जोर दिया जा रहा है।

स्वैच्छिक संगठनों की भूमिका

विकास कार्य में सरकारी तंत्र की बड़ी भूमिका आशानुरूप परिवर्तन नहीं ला सकी है। प्रो. माहेश्वरी के अनुसार नौकरशाही ही ग्रामीण पुनर्निर्माण के कार्यक्रमों का सूत्रपात और क्रियान्वयन करती है। यह नौकरशाही कुछ गतिविधियों के लिए उपयुक्त नहीं है जिसके कारण उसे इन कार्यक्रमों को चलाने में सफलता हाथ नहीं लगी है। अतः ये कार्य स्वैच्छिक अभिकरणों को सौंपे जाने चाहिए, क्योंकि वे सृजनशीलता, तात्कालिकता और नवीनता आदि प्रदान करते हैं।

स्वयसेवी संगठन के सदस्य एक रेशम कीट पालक का मार्गदर्शन करते हुए

कृषि सुधार और ग्रामीण विकास पर खाद्य एवं कृषि संगठन (एफ.ए.ओ.) के तत्वावधान में जुलाई 1979 में रोम में आयोजित विश्व सम्मेलन की घोषणाओं में यह कहा गया था कि कृषि सुधार और ग्रामीण विकास का उद्देश्य ग्रामीण जीवन में परिवर्तन लाना है। सभी प्रकार की गतिविधियों और उनके सभी पहलुओं – आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, संस्थागत, पर्यावरणिक एवं मानवीय – को उसी दिशा में अभिमुख किया गया है। सम्मेलन में यह भी कहा गया कि इस रूपान्तरण के लिए जो राष्ट्रीय उद्देश्य और रणनीति बनाई जाए उसमें जन भागीदारी की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए। इसके लिए स्वयंसेवी संगठन काफी सहायक सिद्ध हो सकते हैं।

योजना आयोग ने ठीक ही कहा कि 'उपयुक्त ढंग से संगठित स्वयंसेवी प्रयास, कमजोर और जरूरतमंद लोगों की सहायता हेतु समुदाय में सुलभ सुविधाओं को बढ़ाने में काफी हद तक कारगर हो सकता है' और ऐसे लोग बेहतर जीवन पा सकते हैं। इसके लिए जरूरी साधन उन करोड़ों लोगों के समय, ऊर्जा और अन्य स्रोतों से प्राप्त होंगे जिनके लिए स्वयंसेवी संगठन रचनात्मक कार्य देश में सुलभ विविध स्थितियों के अनुरूप कर सकते हैं।

इस प्रकार स्वैच्छिक संगठनों की भूमिका अन्तर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय दोनों ही स्तरों पर व्यापक रूप से मान्य हुई है। ये संगठन बहुत हद तक लोगों को सहायता प्रदान करने में सहायक हो सकते हैं ताकि लोग प्रगति के

अपने प्रयास चला सकें। ये संगठन लोगों में अवस्थित प्रभविष्णुताओं को उत्तेजित करने और बढ़ाने का काम भी कर सकते हैं; विकास में लोगों की भागीदारी प्रक्रिया का श्रीगणेश कर सकते हैं; लाभ न पा सकने वाले समूह को सामाजिक न्याय दिला सकते हैं और उनमें समाज में अपने अधिकार और कर्त्तव्यों के प्रति जागरूकता पैदा कर सकते हैं तथा ग्रामीण क्षेत्रों के जीवन में सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक पहलुओं में प्रगति को बढ़ावा दे सकते हैं।

स्वैच्छिक संगठनों का ढांचा

स्वैच्छिक संगठन व्यक्तियों का ऐसा समूह होता है जिन्होंने स्वयं को एक विधि सम्मत निकाय में संगठित कर लिया है ताकि वे संगठित कार्यक्रमों के माध्यम से सामाजिक सेवाएं प्रदान कर सकें। लार्ड बिवरिज के शब्दों में 'ठीक से कहें तो स्वयंसेवी संगठन ऐसा संगठन होता है जिसका कार्य आरम्भ और संचालन इसके सदस्यों द्वारा बिना बाहरी हस्तक्षेप के होता है, चाहे इसके कार्यकर्ताओं को वेतन दिया जाता हो या नहीं।' ऐसे संगठनों का एक संगठनात्मक व्यक्तित्व होता है। जैसे अपनी ही पहल पर अथवा बाहर से प्रेरित होकर लोगों के एक समूह द्वारा किसी स्थान विशेष में (आंशिक या पूर्णतः) एक आत्मनिर्भर तरीके से गतिविधियां चलाई जा सकें, उनकी जरूरतें पूरी की जा सकें और साथ ही उनकी तथा सार्वजनिक क्षेत्र की प्रसार सेवाओं को एक दूसरे के करीब लाया जा सके ताकि ग्रामीण कमजोर वर्गों के न्यायोचित और प्रभावी विकास को अंजाम दिया जा सके।

उत्प्रेरक अभिकरण

स्वैच्छिक संगठनों को ग्रामीण विकास के लिए उत्प्रेरक अभिकर्ता के बतौर माना जाता है, क्योंकि ये आमतौर पर ग्रामीण क्षेत्रों को विकसित करने तथा खास करके ग्रामीण गरीबों के विकास में विविध भूमिकाएं अदा करते हैं। स्वैच्छिक संगठनों को गरीबों का दुख–दर्द कम करने के काम में सरकारी अभिकरणों की अपेक्षा अधिक प्रभावी माना जाता है, क्योंकि उनके कार्यकर्ता समर्पित भाव से अपना काम करते हैं; वे गरीब लोगों के साथ सरकारी लोगों की अपेक्षा नजदीकी सम्बन्ध स्थापित कर पाते हैं और नियमों/उपनियमों और पद्धतियों से बंधे नहीं होते हैं। वे अपनी गतिविधियों का शीघ्रता से समंजन कर लेते हैं एवं लगातार अपने अनुभवों से सीखते चलते हैं। इस प्रकार यह गरीबों और दलितों के लिए ज्यादा लाभकारी सिद्ध होते हैं।

स्वयंसेवी संगठन ग्रामीण गरीबों को ग्रामीण विकास प्रक्रिया में सक्रिय भागीदारी के लिए संगठित भी कर सकते हैं। ... भाग लेने वालों द्वारा उनकी क्षमता के अनुसार कुछ योजनाएं चुनने में ये संगठन मदद कर सकते हैं।

आमतौर पर ग्रामीण विकास कार्यक्रम असफल इसलिए होते हैं, क्योंकि कार्यान्वयन एजेंसियों के पास लक्षित समूहों अर्थात् छोटे और सीमान्त किसानों, कृषि और गैर–कृषि मजदूरों, ग्रामीण कारीगरों, अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों तथा अन्य पिछड़े वर्गों के बारे में समुचित जानकारी नहीं होती है। इसके अलावा लाभार्थियों को योजनाएं एवं सुविधाएं हैं उनके बारे में उन्हें पूरी तरह से जानकारी नहीं दी जाती है। छठी योजना में ठीक ही कहा गया है कि 'पिछले अनुभव यह दर्शाते हैं कि गरीबों के लिए बनाए गए कार्यक्रमों में से अधिकतर उन तक अंशतः भी नहीं पहुंच पाते, क्योंकि उन्हें जो अवसर प्रदान किए जाते हैं उनके बारे में लाभार्थियों में जागरूकता का अभाव होता है।' स्वैच्छिक संगठन इन कार्यक्रमों में भाग लेने वालों में जागरूकता पैदा करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकते हैं। लोगों के मन में विशिष्ट योजनाओं में उत्सुकता पैदा करने और ठीक तरह से उनको मार्गदर्शन देने में ये संगठन निजी सम्पर्क द्वारा काफी काम कर सकते हैं। इसके अलावा स्वयंसेवी संगठन ग्रामीण गरीबों को ग्रामीण विकास प्रक्रिया में सक्रिय भागीदारी के लिए संगठित भी कर सकते हैं। वे प्रत्येक योजना, उसके उद्देश्य, उपेक्षित लाभ, कार्य–प्रणाली आदि के बारे में बेहतर ढंग से समझा सकते हैं। इस प्रकार भाग लेने वालों द्वारा उनकी क्षमता के अनुसार कुछ योजनाएं चुनने में ये संगठन मदद कर सकते हैं।

लाभार्थियों का चुनाव

ऐसे संगठन विविध योजनाओं के लिए लाभार्थियों की ठीक पहचान और उनके चयन में महत्वपूर्ण योगदान कर सकते हैं। हम लाभार्थियों की पहचान और चयन के बारे में चल रहे पक्षपातपूर्ण दृष्टिकोण से छुटकारा पा सकते हैं। गैर सरकारी संगठन ग्रामीणों की औपचारिक बैठकें करके केवल वास्तविक और जरूरतमंद परिवारों का ही चयन करके उन्हें काम दिलाने में मदद कर सकते हैं। चयन के बाद कुछ अभिकरणों के माध्यम से लाभार्थी बैंक से वित्तीय सहायता मांगते हैं। कभी–कभी परिसम्पत्तियां खरीदने के कारण ऋण की अदायगी करने में अनावश्यक देरी होती है। स्वैच्छिक संगठन ऐसे मामले में आगे आकर अदायगी करवाने में सहायक हो सकते हैं। दूसरी मुसीबत निहित–स्वार्थियों की है जो पशुओं की खरीद को प्रभावित करते हैं जिसके लिए ऋण प्रदान किया जाता है। ऐसा बहुधा देखा गया है कि 3,000 रुपये की भैंस का मूक ऋणी से 4,000 रुपये ले लिया जाता है जो कि आधिकारिक खरीद दल और पशु–स्वामी की मिलीभगत से होता है और 1,000 रुपये कानून के पहरेदारों द्वारा हथिया लिए जाते हैं और समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम का पैसा बह जाता है। इस प्रकार के गलत धन–प्रवाह को रोकने में स्वैच्छिक संगठन सहायक हो सकते हैं।

कारगर भूमिका

ये संगठन ग्रामीण गरीबों का पेशागत कौशल बढ़ाने तथा उनमें प्रबन्धकीय विशेषज्ञता विकसित करने में भी सहायक हो सकते हैं। इससे लाभार्थियों में आत्म–विश्वास काफी हद तक बढ़ाया जा सकता है। अभी बहुत सारी समस्याएं अधिकारी वर्ग के साथ बैठकर बातचीत करके

(शेष पृष्ठ 19 पर)

ग्रामीण विकास में कृषि विज्ञान केन्द्रों की भूमिका

डा. नलिन चन्द्र त्रिपाठी*

देश की आजादी के बाद नीति–निर्धारण कर्त्ताओं के सामने ग्रामीण विकास के सन्दर्भ में दो प्राथमिकताएं थीं। पहला कृषि उत्पादन और उत्पादकता बढ़ाना, जिससे एक ओर जहां किसानों की आय बढ़े वहीं देश खाद्यान्न के क्षेत्र में आत्म–निर्भर बन सके। दूसरी प्राथमिकता आवश्यक सामाजिक सेवाओं का एक निश्चित न्यूनतम स्तर गांवों में उपलब्ध कराना था। पांच लाख से अधिक गांवों में 74 प्रतिशत से अधिक आबादी रहती है। इसमें से तीन चौथाई से अधिक लोग पुराने तरीकों से ही खेती कर रहे हैं। गांवों के पुराने एवं पारंपरिक काम–धन्धे ठप या लुप्त होते जा रहे हैं। आबादी में लगातार वृद्धि हो रही है। ग्रामीण विकास की समस्याओं का समाधान सामान्य तौर पर तीन क्षेत्रों से जुड़ा हुआ है – कृषि, लघु व कुटीर उद्योग तथा वित्तीय संसाधन। इनमें कृषि का महत्व सबसे अधिक है, क्योंकि इसके साथ अनेक सहायक और पूरक क्षेत्र – जैसे पशुपालन, मछली पालन, मुर्गी पालन, मधु मक्खी पालन, रेशम पालन, मशरूम उत्पादन के अलावा कुटीर और लघु उद्योग जुड़े हुए हैं।

कुटीर और लघु उद्योगों के लिए अधिकांश कच्चा माल कृषि क्षेत्र से ही आता है। इसलिए कृषि क्षेत्र की तरफ और ध्यान देना आवश्यक है। विशेषकर नकदी फसलों जैसे गन्ना, कपास, फल, सब्जी, मूंगफली आदि से काम के अवसर बढ़ने के साथ–साथ आय में वृद्धि भी की जा सकती है। इनके विकास के साथ इनसे जुड़े कुटीर उद्योग जैसे फलों की डिब्बाबन्दी आदि को भरपूर बढ़ावा दिया जा सकता है।

कृषि विज्ञान केंद्र में प्रशिक्षण प्राप्त करते हुए युवक

अपार संभावनाएं

सन् 2015 में देश को 23.2 से 23.5 करोड़ टन अनाज की जरूरत पड़ेगी जो सन् 2030 में बढ़कर 26 से 26.4 करोड़ टन हो जायेगी। देश की खाद्यान्नों की आवश्यकता पूरी करने के लिए सन् 2030 में किसानों को 11.4 करोड़ टन चावल, 8 से 8.3 करोड़ टन गेहूं, 1.3 करोड़ टन मक्का और 2.4 से 2.6 करोड़ टन दालें पैदा करनी होंगी। किन्तु कृषि के सभी क्षेत्रों में चाहे वह अनाज, दलहन, तिलहन, बागवानी, पशुपालन, मछली पालन, मशरूम उत्पादन, रेशम पालन या मधुमक्खीपालन जैसे क्षेत्रों सभी में उत्पादन बढ़ाने की काफी संभावनाएं हैं। अन्य क्षेत्र जिनमें विशेष उपलब्धि प्राप्त की जा सकती है वह है टेक्नालाजी का हस्तांतरण।

सर्वेक्षणों से पता चलता है, कि उपलब्ध कृषि टेक्नोलाजी का केवल 30–40 प्रतिशत भाग अभी तक किसानों तक पहुंच पाया है। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद की राष्ट्रीय प्रदर्शन परियोजनाओं में सर्वोच्च औसत से संबंधित परिणामों से पता चलता है कि टेक्नोलाजी की यह खाई बहुत चौड़ी है और फसलों की उपज बढ़ाने की बहुत गुजांइश है।

हरित क्रांति ने देश को खाद्यान्न के मामले में आत्मनिर्भर बनाया, किन्तु टिकाऊ खेती नहीं हुई। इस सन्दर्भ में कृषि वैज्ञानिक डा. एम.एस. स्वामीनाथन का यह कथन महत्वपूर्ण है, कि हमें वैकल्पिक खेती अपनानी चाहिए, जो खाद्य सुरक्षा का केन्द्र बन सके। यह तभी संभव हो सकता है जब किसानों और वैज्ञानिकों में ताल–मेल हो।

अनुसंधान के लाभ किसानों तक पहुंचे

प्रधानमंत्री, श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने भारतीय विज्ञान कांग्रेस के 88वें अधिवेशन में किसानों को औपचारिक कृषि शिक्षा देने की बात कही। नई सदी की चुनौती का यदि सामना करना है तो किसानों को प्रशिक्षित किए बिना सफलता मिलने वाली नहीं है। नोबुल पुरस्कार विजेता डा. नारमन ई. बोरलाग का कहना उचित ही है, कि अनुसंधान के परिणाम किसानों तक पहुंचने आवश्यक हैं। यदि ऐसा नहीं होता तो अनुसंधान व्यर्थ है।

* सह प्रशिक्षक शस्य विज्ञान, कृषि विज्ञान केंद्र, शाहजहांपुर

विज्ञान कांग्रेस में विशेषज्ञों ने भी इसी आशय का मत व्यक्त किया और किसानों तथा वैज्ञानिकों के बीच की दूरी कम करने की दिशा में प्रयास करने का निश्चय किया।

हमारे देश में कृषि वैज्ञानिकों ने कई तकनीकों का विकास किया है, किन्तु वे किसानों तक नहीं पहुंच सकी हैं। इसके लिए कृषि विस्तार प्रणालियों को प्रभावी बनाने की आवश्यकता है।

टेक्नालाजी हस्तान्तरण से जुड़े लोगों की बदौलत ही देश की अनाज की पैदावार चार गुना बढ़ी है। पहली पंचवर्षीय योजना की शुरुआत के समय देश का खाद्यान्न उत्पादन 5.09 करोड टन था जो आज 20 करोड़ टन से भी अधिक हो गया है।

टेक्नोलाजी हस्तान्तरण एक जटिल काम है जिसके लिए बहुशाखीय और बहुसंस्थागत दृष्टिकोण अपनाना पड़ता है। इसके लिए कृषि विभागों, अनुसंधान संगठनों, शिक्षा संस्थानों और विस्तार एजेंसियों के बीच गहरे ताल–मेल की जरूरत होती है। मोटे तौर पर कृषि और संबंद्ध पैदावार तकनीकों के विस्तार कार्य के प्रति समर्पित चार मुख्य व्यवस्थाएं हैं। केन्द्रीय मंत्रालय और राज्यों के कृषि विभागों की विस्तार प्रणाली, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के विस्तार प्रणाली, ग्रामीण विकास मंत्रालय विकास कार्यक्रम। टेक्नालाजी हस्तान्तरण से जुड़े लोगों की बदौलत ही देश की अनाज की पैदावार चार गुना बढ़ी है। पहली पंचवर्षीय योजना की शुरुआत के समय देश का खाद्यान्न उत्पादन 5.09 करोड़ टन था जो आज 20 करोड़ टन से भी अधिक हो गया है।

कृषि विज्ञान केन्द्रों की भूमिका

टेक्नोलाजी के प्रत्यक्ष हस्तान्तरण की सशक्त और सबसे कारगर विधि है कृषि विज्ञान केन्द्र। कृषि विज्ञान केन्द्रों के अनुभव का समूचे देश में विस्तार करना आवश्यक है। इनकी दूसरी गतिविधियों में खेत पर तकनीकों का परीक्षण, सेवाकाल में विस्तार कर्मियों की जांच और प्रमुख प्रदर्शनों का आयोजन शामिल है। देश में इस समय कुल मिलाकर 261 कृषि विज्ञान केंद्र है जो उत्पादन तकनीकों के प्रसार के लिए अन्य एजेंसियों के सहयोग से प्रमुख प्रदर्शनों की व्यवस्था के अलावा किसान मेलों, प्रक्षेत्र दिवसों, किसान गोष्ठियों, फिल्म प्रदर्शनियों, रेडियो और टी.वी. वार्ताओं और प्रदर्शनियों का आयोजन करते है तथा ग्रामीण युवाओं तथा सेवारत कर्मियों के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाते हैं।

किसानों, विस्तार कर्मचारियों, कृषि शिक्षकों और प्रशिक्षकों को उपयुक्त प्रशिक्षण देना कृषि उत्पादन बढ़ाने के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। विभिन्न शैक्षणिक संस्थाओं ने अलग–अलग मात्राओं में इस दिशा में ध्यान दिया पर उनके सामने कई कमियां नजर आईं (क) विषय-वस्तु का कमजोर आधार (ख) शैक्षणिक दृष्टिकोण और प्रशिक्षण के तरीके त्रुटिपूर्ण (ग) व्यावहारिक प्रशिक्षण की सुविधाओं का अभाव (घ) प्रशिक्षण कार्यक्रम का तात्कालिक आवश्यकताओं से कोई संबंध न होना (ङ) गुणवत्ता की जगह मात्रा पर जोर दिया जाना। (च) प्रशिक्षण के ढांचे के लिए सीमित वित्तीय सहायता। इन कमियों को दूर करने के लिए भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद ने मौजूदा विकसित प्रभावकारी प्रौद्योगिकी को खेती व उनसे सम्बन्धित काम धंधे में लगे लोगों को अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन व्यवसायिक प्रशिक्षण के माध्यम से आवश्यकतानुसार उपलब्ध कराने के ध्येय से डा. मोहन सिंह मेहता समिति के सिफारिशों के आधार पर कृषि विज्ञान केन्द्रों की स्थापना का निर्णय किया गया।

कृषि विज्ञान केन्द्रों का आधार

कृषि विज्ञान केन्द्र निम्नलिखित मुख्य तीन सिद्धान्तों पर आधारित है :

- कृषि तथा इससे जुड़े उद्यमों का उत्पादन बढ़ाना
- प्रशिक्षण और शिक्षा देने की विशेष प्रणाली काम के अनुभव के माध्यम से हो यानी आदमी काम भी करता रहे और सीखता भी रहे।
- गांव की आबादी के कमजोर वर्गों पर ज्यादा बल दिया जाए जिससे कि उनका जीवन स्तर ऊंचा उठ सके।

कृषि विज्ञान केन्द्र के सभी कार्यक्रम आवश्यकता पर आधारित हैं और लोगों की कार्यकुशलता बढ़ाना ही इनका मुख्य लक्ष्य है।

कृषि विज्ञान केन्द्र के लिए निर्धारित अनुज्ञापत्र निम्नवत है :

- राज्य के कृषि विश्वविद्यालयों के विषय विशेषज्ञों, क्षेत्रीय अनुसंधान संस्थान के वैज्ञानिकों तथा राज्य सरकार के विषय–विशेषज्ञों तथा कार्यकर्ताओं के बीच समन्वय स्थापित करके किसानों के प्रक्षेत्रों पर परीक्षण आयोजित कर क्षेत्र की परिस्थिति एवं संसाधनों के अनुरूप समगतिशील भूमि उपयोगी टेक्नालाजी विकसित करना।
- प्रसार कार्यकर्ताओं को उनके कार्यक्षेत्र के अनुरूप शोध पर आधारित टेक्नालाजी का नियमित व्यावहारिक प्रशिक्षण प्रदान करना।
- ग्रामीण युवकों के लिए लम्बी अवधि के स्वरोजगार परक प्रशिक्षण आयोजित करना।
- विभिन्न फसलों पर प्रथम पंक्ति प्रदर्शन आयोजित करना तथा सम्बन्धित प्रदर्शनों के उत्पादन आंकड़े तथा वापसी (फीड बैक) सूचनाएं प्राप्त करना।

कृषि विज्ञान केन्द्र की विशेषताएं

- कृषि विज्ञान केन्द्र की एक वैज्ञानिक सलाहकार समिति होती है जिसमें जिले के कृषि एवं सम्बन्धित विभागों के अधिकारी सदस्य होते हैं, साथ ही साथ कृषकों को भी सदस्य नामित किया जाता है। समिति द्वारा वर्ष में एक या दो बार बैठक करके कार्य–योजना तैयार की जाती है जिससे कि कार्य की आवश्यकता और उसकी गुणवत्ता पर ध्यान दिया जा सके।
- कृषि विज्ञान केन्द्र द्वारा नवविकसित प्रौद्योगिकी की जानकारी प्राप्त करने के उद्देश्य से कृषि विश्वविद्यालयों तथा क्षेत्रीय कृषि अनुसंधान संस्थानों से नियमित सम्पर्क बनाए रखा जाता है।
- कृषि विज्ञान केन्द्र द्वारा चलाए जाने वाले पाठ्यकमों में भाषण तथा नोट बुक वाली

प्रशिक्षण पद्धति के बजाय खेत एवं कार्यशाला में "करके सिखाना" तथा करके सीखना" पद्धति से प्रशिक्षण दिया जाता है।

- प्रशिक्षण कार्यक्रम निर्धारित करने से पूर्व क्षेत्र का सर्वेक्षण करके व्यक्तिगत सम्पर्क तथा साक्षात्कार द्वारा उपलब्ध आंकड़ों से क्षेत्र आवश्यकताओं का पता लगाया जाता है। तदोपरान्त केन्द्र के वैज्ञानिकों द्वारा स्थानीय आवश्यकतानुसर प्रशिक्षण कार्यक्रम बनाया जाता है।
- केन्द्र कभी भी एक जैसा पाठ्यक्रम नहीं रखता है बल्कि प्रत्येक पाठ्यक्रम अपने में बिल्कुल बेजोड़ या भिन्न होता है। हर पाठ्यक्रम का अपना अलग दृष्टिकोण, अवधि और कार्यविधि होती है जोकि विशेष प्रशिक्षण समूह व प्रौद्योगिकी के अनुकूल होती है।
- कृषि विज्ञान केन्द्र में विभिन्न प्रमुख विषयों के विशेषज्ञ/वैज्ञानिक नियुक्त होते हैं। इसके अलावा केन्द्र पर यह भी प्रावधान है कि विभिन्न क्षेत्रों में दक्षता प्राप्त अतिथि, विशेषज्ञों, अभयागत प्रशिक्षकों, प्रगतिशील किसानों, कारीगरों, प्रसार कर्मचारियों को विशेष पाठ्यक्रमों के लिए तदर्थ आधार पर आमन्त्रित किया जाए।
- कृषकों को छुट-पुट तरीके से प्रशिक्षित करने की साधारण विधि के बजाय कृषि विज्ञान केन्द्र का इरादा यह होता है कि कृषकों को जो भी प्रशिक्षण दिया जाए वह गुणवत्ता से परिपूर्ण हो भले ही विषय ज्यादा न हों।
- प्रशिक्षण की गुणवत्ता को ऊंचे दर्जे का बनाए रखने के उद्देश्य से कृषि विज्ञान केन्द्र में प्रशिक्षण प्रक्षेत्र, पशु एवं कुक्कुटशाला कृषि यन्त्रशाला, गृह विज्ञान/अन्यविषयों से सम्बन्धित प्रयोगशालाएं तथा कृषि सूचना केन्द्र प्रशिक्षणार्थियों के लिए उपलब्ध है।
- कृषि विज्ञान केन्द्र द्वारा विकसित प्रौद्योगिकी का क्षेत्र विशेष के लिए उपयोगिता परीक्षण तथा मूल्यांकन किया जाता है।
- कृषि विज्ञान केन्द्र पर क्षेत्र की आवश्यकतानुसार विभिन्न फसलों के उत्तम गुणवत्ता के बीज उत्पादन करके कृषकों को उपलब्ध कराए जाते हैं।
- कृषि विज्ञान केन्द्र के कृषि विकास में बढ़ते योगदान को ध्यान में रखते हुए भारत सरकार ने देश के प्रत्येक जनपद में एक कृषि विज्ञान केन्द्र स्थापित करने का निर्णय लिया है। वर्तमान में देश में कुल 261 कृषि विज्ञान केन्द्र कार्यरत हैं।

ग्रामीण विकास बहुपक्षीय व्यवस्था है और विभिन्न संस्थाएं अलग-अलग क्षेत्र में काम कर रही है। कृषि विज्ञान केन्द्र में सम्पूर्ण प्रशिक्षण के लिए उनसे सम्पर्क कर लाभ उठाना होगा। इसलिए भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद ने कृषि विज्ञान केन्द्रों में थोड़े कर्मचारी रखे हैं। इन संगठनों से विशेषज्ञ बुलाए जाएंगे जो अपने-अपने क्षेत्रों में प्रशिक्षण देंगे। साथ ही अनुभवी और प्रगतिशील किसानों को भी बुलाया जायेगा।

कृषि विज्ञान केन्द्रों का प्रबन्ध एक समिति करती है जिसमें सभी वर्गों और सम्बद्ध संगठनों के प्रतिनिधि होते हैं। इस तरह सभी संगठनों का सहयोग मिल सकेगा। केन्द्र सीधे तौर पर कृषि विश्वविद्यालयों और अनुसंधान केन्द्रों से सम्बन्धित होते है। इससे उन्हें नवीनतम वैज्ञानिक जानकारी उपलब्ध हो जाती है और स्थानीय संस्थाओं का भी सहयोग लिया जाता है।

समकालिक ग्राम विकास कार्यक्रमों को कृषि विज्ञान केन्द्रों और प्रशिक्षण केन्द्रों से जोड़ा जाना चाहिए। विकास कर्मचारियों और ग्रामीणों के प्रशिक्षण में कृषि विज्ञान केन्द्रों से पूरा लाभ उठाना चाहिए। ❑

(पृष्ठ 16 का शेष) **स्वैच्छिक संगठन : ग्रामीण विकास.....**

हल की जा सकती हैं। यह तभी होगा जब अधिकारियों को ऐसा करने के लिए शिक्षित किया जाए और तदनुरूप योजनाएं बनाई जाएं। इन संगठनों का उपयोग स्थानीय वित्तीय संसाधन बटोरने के लिए भी किया जा सकता है ताकि संस्था को आत्मनिर्भर बनाया जा सके।

यह एक वास्तविकता है कि कुछ लाभार्थी ईमानदार नहीं हैं और वे बैंकों द्वारा प्रदत्त ऋण का दुरुपयोग करते हैं। इससे वसूली में समस्याएं पैदा होती हैं। स्वैच्छिक संगठन ऐसे लाभार्थियों को प्रभावी और उत्तम उपयोग के लिए ऋणों का इस्तेमाल करने के लिए प्रेरित कर मार्गदर्शक और मित्र की भूमिका निभा सकते हैं और उनके साथ बेहतर संपर्क साधकर गलत उपयोग को नियंत्रित कर सकते हैं। इससे वसूली की स्थिति में भी सुधार आएगा।

मूल्यांकन में सहायक

विविध कार्यक्रमों के निर्देशन और मूल्यांकन की दिशा में भी स्वैच्छिक संगठन काफी बड़ी भूमिका निभा सकते हैं, क्योंकि वे इन कार्यक्रमों के क्रियान्वयन से संबंधित अपेक्षित सूचना और आंकड़ें इकट्ठे करके सरकारी तंत्र को आवश्यक क्षेत्रीय सूचना देने की प्रक्रिया में सहायक हो सकते हैं। उनके द्वारा दी गई सूचनाओं को नीति-निर्माता काफी उपयोगी मानते हैं। ऐसे संगठन ग्रामीण विकास के विभिन्न कार्यक्रमों पर सक्रिय तौर पर शोध कार्य कर सकते हैं ताकि ग्रामीण जन समुदाय की हालत सुधारी जा सके। यह संगठन सतत प्रयास, बुद्धि चातुरी और लोचपूर्ण नवीन कार्य करके ग्रामीण विकास को नई दिशा प्रदान कर सकते हैं।

अतः हम यह कह सकते हैं कि स्वैच्छिक संगठन गरीबी निवारण में एवं कई अन्य क्षेत्रों में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकते हैं। अन्य कार्यक्रमों में ग्रामीण साक्षरता, शिक्षा, स्वास्थ्य, पर्यावरण, परती धरती विकास, आधुनिक प्रौद्योगिकी का उपयोग, गैर पारंपरिक ऊर्जा, साफ-सफाई आदि का समावेश हो सकता है। साथ ही वे ग्रामीण समुदाय को अपने ही विकास में सक्रिय रूप से भाग लेने के लिए संगठित कर सकते हैं, प्रोत्साहित कर सकते हैं और समर्थ बना सकते हैं। इस प्रकार आज स्वैच्छिक संगठन सरकार के अनुकूल झुकाव के कारण गांव के सामाजिक आर्थिक परिवर्तन में एक तंत्र के रूप में उभर रहे हैं।

प्रवक्ता समाज शास्त्र,
एस.आर.के. (पी.जी.)
कालेज, फिरोजाबाद

मध्य प्रदेश में

सहकारी आंदोलन ग्रामीण विकास का एक सशक्त माध्यम

डा. बालमुकुन्द बघेल*

सहकारिता आर्थिक दृष्टि से निर्धन और कमजोर व्यक्तियों का संगठन है जो मितव्ययता, आत्म–निर्भरता और पारस्परिक सहायता द्वारा आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए बनाया जाता है।

हमारे देश की अर्थव्यवस्था का मूल आधार कृषि है तथा 1991 की जनगणना के अनुसार देश में 74.3 प्रतिशत लोग गांवों में निवास कर रहे हैं और प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कृषि पर निर्भर रहकर अपना जीविकोपार्जन कर रहे हैं। यदि हम ग्रामीण क्षेत्रों की आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियों का विश्लेषण करें तो पाते हैं कि स्वतंत्रता के 53 वर्ष बीत जाने के बाद भी अशिक्षित, छोटे किसान और कृषि मजदूर आज भी अपने विकास के लिए लालायित हैं तथा सम्पन्न और शक्तिशाली वर्ग के दबाव में अपना जीवन बसर कर रहे हैं। वे विकास चाहते हैं और दबाव की इन बेड़ियों

दुग्ध सहकारी समिति में दूध का वितरण

* व्याख्याता (एम.ओ.एम.) सहोद्रराय शासकीय महिला पालिटिकनिक, सागर (म.प्र.)

से मुक्त होना चाहते हैं किन्तु उन्हें इन मुसीबतों से छुटकारा दिलाने वाला कोई उचित मार्ग नहीं मिल पा रहा है। हां उन्हें एक मार्ग में आशा की जो किरण दिखाई देती है, वह है 'सहकारी आंदोलन'।

सहकारी आंदोलन के माध्यम से समाज के कमजोर वर्गों, छोटे कृषकों, कृषि मजदूरों का उत्थान किया जा सकता है। इस वर्ग को

सहकारी आंदोलन के माध्यम से समाज के कमजोर वर्गों, छोटे कृषकों, कृषि मजदूरों का उत्थान किया जा सकता है। इस वर्ग को न केवल कृषि उत्पादन हेतु ऋण उपलब्ध कराया जा सकता है बल्कि उन्हें ऐसे रोजगार धंधों के लिए भी वित्तीय सहायता दी जा सकती है, जो कि ग्रामीण क्षेत्र में उपलब्ध संसाधनों के आधार पर संचालित किए जा सकते हैं।

न केवल कृषि उत्पादन हेतु ऋण उपलब्ध कराया जा सकता है बल्कि उन्हें ऐसे रोजगार धंधों के लिए भी वित्तीय सहायता दी जा सकती है, जो कि ग्रामीण क्षेत्र में उपलब्ध संसाधनों के आधार पर संचालित किए जा सकते हैं अर्थात् सहकारी आंदोलन से ग्रामीणों को 'स्वयं के साधनों से स्वयं का विकास' करने का अवसर दिया जा सकता है। ऐसा करने से जहां ग्रामीण अर्थव्यवस्था में व्याप्त सामाजिक असंतुलन में कमी आएगी वहीं ग्रामीण क्षेत्र में उपलब्ध जनशक्ति का भी अधिकतम प्रयोग किया जा सकेगा।

भारत सरकार सहकारिता के महत्व को जानती है इसी वजह से अब तक गठित सभी सरकारों ने सहकारिता को पंचवर्षीय योजनाओं में महत्वपूर्ण स्थान दिया है सिवाय आठवीं पंचवर्षीय योजना को छोड़कर। नवीं पंचवर्षीय योजना (1997 से 2002) के प्रस्तावित प्रारूप में सहकारी संस्थाओं को आर्थिक रूप से सक्षम, कुशल बनाने तथा खुले बाजार की प्रतिस्पर्धा का सामना करने के लिए व्यावसायीकरण एवं विविधीकरण के लिए आवश्यक सहायता देने का लक्ष्य है।

भारत ने विकसित एवं विकासशील देशों की तर्ज पर अपने देश में व्याप्त गरीबी, बेकारी, भुखमरी और शोषण जैसी समस्याओं से निपटने के लिए रामबाण औषधि के रूप में सन् 1904 के सहकारी साख अधिनियम के साथ इस मार्ग को चुना था। महात्मा गांधी, पंडित जवाहरलाल नेहरू एवं बैकुण्ठभाई मेहता जैसे राष्ट्र के चिंतक एवं देशभक्त इसे भारत के सर्वांगीण विकास का एकमात्र साधन तथा लोकतंत्र की स्थापना का एक संबल मानते थे।

यह सर्वथा सत्य है कि आर्थिक प्रगति सदैव पूर्ति के साधनों पर निर्भर करती है। भारतीय किसानों की साख संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति के कई स्रोत हैं जैसे – सरकार, साहूकार, रिश्तेदार, वाणिज्यिक बैंक, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक आदि किंतु किसानों की साख समस्या का निदान दीर्घकालीन अनुभव एवं विचार–विमर्श के बाद सहकारी साख को ही माना गया है। यदि हम भारतीय सहकारी साख आंदोलन की संरचना पर नजर डालें तो त्रिस्तरीय साख संरचना उभरकर सामने आती है। इस त्रिस्तरीय साख संरचना पर शीर्ष स्तर पर अपेक्स (शीर्ष) बैंक या राज्य सहकारी बैंक हैं तो जमीन स्तर पर सहकारी समितियां तथा इन दोनों को सेतु के रूप में मध्य स्तर पर जोड़ने का काम जिला केन्द्रीय सहकारी बैंकों का है।

भारत के मध्य में स्थित मध्य प्रदेश राज्य जिसे 'हृदय प्रदेश' की संज्ञा दी जाती है में भी सहकारी साख संरचना त्रिस्तरीय है। शीर्ष स्तर पर मध्य प्रदेश राज्य सहकारी बैंक भोपाल, जमीन स्तर पर 45 जिलों में सफलतापूर्वक कार्य कर रहीं सहकारी साख समितियां हैं। तो मध्यस्तर पर जिला केन्द्रीय सहकारी बैंकों की भूमिका सराहनीय है। शीर्ष बैंक, जिला केन्द्रीय सहकारी बैंकों को पुनर्वित, समाशोधन गृह एवं मार्गदर्शन की सुविधा देता है तथा जिला केन्द्रीय सहकारी बैंक यही कार्य प्राथमिक सहकारी संस्था और अन्य सहकारी संस्थाओं के लिए करता है। पैक्स, कृषक सेवा समिति एवं लेम्पस जिला केन्द्रीय सहकारी समिति बैंक से प्राप्त वित्त एवं सुविधा को अपने सदस्यों तक पहुंचाती हैं। इस प्रकार तीनों संस्थाएं एक–दूसरे से संबद्ध सहयोगी तथा एक–दूसरे के प्रति उत्तरदायी होती हैं।

वर्तमान में ग्रामीण साख के अलावा कृषि उपजों का विपणन, भण्डारण, सार्वजनिक वितरण प्रणाली के अन्तर्गत उपभोक्ता वस्तुओं का वितरण, (1 अप्रैल 1992 से पूर्ण रूप से सहकारी क्षेत्र के अन्तर्गत), गृह निर्माण, नगरीय साख व्यवस्था, दुग्ध व्यवस्था, दुग्ध उत्पादन, मत्स्यपालन, विद्युत विकास एवं प्रदाय आदि क्षेत्रों में सहकारिता के माध्यम से संपादित किए जा रहे हैं।

मध्य प्रदेश राज्य का पुनर्गठन 1956 में हुआ था। पुनर्गठन के पूर्व प्रदेश का सहकारी आंदोलन काफी बिखरा हुआ था तथा नवीन राज्य बनने के पहले तक मध्यप्रदेश तथा भोपाल राज्य में जिला केन्द्रीय सहकारी बैंक नहीं थे। केन्द्रीय बैंक बहुधा मध्य भारत एवं महाकौशल में थे तथा एक जिले में एक से अधिक बैंक विद्यमान थे राज्य पुनर्गठन के बाद ही प्रदेश के सहकारी आंदोलन के विकास को बल मिला है। पहली नवंबर 2000 को मध्यप्रदेश के अधीन एवं सहोदर कहे जाने वाले भाग छत्तीसगढ़ को पृथक राज्य के रूप में पुनर्गठित कर दिया गया है। इससे प्रदेश से जुड़े तथ्यों में व्यापक परिवर्तन आए हैं जैसे प्रदेश का क्षेत्रफल घटकर 308 वर्ग किमी. हो गया है जिलों की संख्या 45 तथा तहसीलें 260, विकासखण्ड 313 एवं कुल गांव 55,841 हैं। जिनमें से 51,806 गांव आबाद

हैं। एकीकृत मध्य प्रदेश में अक्तूबर 2000 तक जिला केन्द्रीय सहकारी बैंकों की संख्या 45, कुल सहकारी समितियों की संख्या लगभग 36 हजार तथा इसके सदस्यों की संख्या 128 लाख से अधिक थी।

वर्तमान में प्रदेश की 90 प्रतिशत जनसंख्या किसी न किसी रूप में सहकारी तंत्र से जुड़ी हुई है। प्रदेश सरकार तथा केन्द्र सरकार की विभिन्न योजनाओं का संचालन सहकारी तंत्र के माध्यम से हो रहा है। ग्रामीण साख के अलावा कृषि उपजों का विपणन, भण्डारण, सार्वजनिक वितरण प्रणाली के अन्तर्गत उपभोक्ता वस्तुओं का वितरण, (1 अप्रैल 1992 से पूर्ण रूप से सहकारी क्षेत्र के अन्तर्गत), गृह निर्माण, नगरीय साख व्यवस्था, दुग्ध व्यवस्था, दुग्ध उत्पादन, मत्स्यपालन, विद्युत विकास एवं प्रदाय आदि क्षेत्रों में सहकारिता के माध्यम से संपादित किए जा रहे हैं। प्रदेश में सहकारी आंदोलन के माध्यम से आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों यथा, हरिजन, आदिवासी, पिछड़ा वर्ग एवं महिलाओं को साहूकारों एवं विचौलियों के चंगुल से मुक्त कराने के प्रयास किए गए हैं। प्रजातांत्रिक विकेन्द्रीकरण को बढ़ावा देने के लिए वर्ष 2001 में ही सहकारी समितियों के चुनाव सफलतापूर्वक सम्पन्न हुए हैं। सहकारी संस्थाओं के सहयोग से कृषि पर आधारित उद्योग, रेशम उद्योग, सोया उद्योग, ब्रेकरी उद्योग, पापड़ उद्योग आदि के विकास को बल मिला है। कृषि के सहायक धंधों जैसे, मुर्गीपालन, पशुपालन, दुग्ध उत्पादन के लिए भी सहकारी संस्थाओं ने ऋण उपलब्ध कराया है। सहकारी साख संस्थाओं के सहयोग से खेती में ट्रैक्टर, थ्रेसर स्प्रिंकलर, उन्नत बीज खाद एवं उर्वरक, कीटनाशक दवाइयां आदि का प्रयोग बढ़ गया है। कृषि भूमि क्रय करने, पम्पसेट खरीदने के लिए भी सहकारी संस्थाएं विभिन्न योजनाओं के अन्तर्गत कृषकों की पूंजी की आवश्यकता की पूर्ति कर रही हैं। आज मध्य प्रदेश में सहकारी संस्थाओं के द्वारा अल्पकालीन, मध्यकालीन एवं दीर्घकालीन सभी प्रकार के ऋण उपलब्ध कराए जा रहे हैं तथा कुल कृषि साख में 60 प्रतिशत से अधिक हिस्सा सहकारी साख का है।

प्रदेश की सहकारी संस्थाएं अकेले ऋण ही प्रदान नहीं करतीं बल्कि दोहरी भूमिका का निर्वाह करते हुए जनता की बचतों को भी स्वीकार करती हैं तथा आवश्यकता पड़ने पर ब्याज सहित लौटाती भी हैं। अब गांव में रहने वाले व्यक्ति को मीलों पैदल चलकर बिजली का बिल भरने शहर नहीं जाना पड़ता बल्कि उसके गांव की सहकारी समिति ही उसे यह सेवा प्रदान करती है।

निष्कर्ष

मध्यप्रदेश राज्य के ग्रामीण विकास में सहकारी आंदोलन एक सशक्त माध्यम है तथा लगभग 96 वर्षों से इन संस्थाओं ने अपने आपको यश, लाभार्जन एवं लिप्सा से दूर रखते हुए ग्रामीणों की सेवा में सफलतापूर्वक कार्य किया है। यह बात अवश्य है कि इनमें भी कहीं–कहीं पर राजनीति एवं कुछ स्वार्थी तत्वों की काली छाया दिखाई देती है जिसे इस वट वृक्ष से दूर रखना होगा तथा सहकारी आंदोलन के परिणात्मक पक्ष पर जोर देने के साथ–साथ गुणात्मक पक्ष पर भी ध्यान देना होगा। सहकारी आंदोलन आज भी शासकीय बैसाखियों पर खड़ा हुआ है अतः इसे पूर्ण स्वायत्तता देते हुए आर्थिक रूप से सक्षम बनाना होगा तथा ग्रामीणों को अधिक से अधिक संख्या में इस आंदोलन में सहभागी बनाते हुए उन्हें सहकारिता के महत्व को समझाना होगा। ❑

लघुकथा

खुदा की देन

तारिक असलम "तस्नीम"

जावेद के बचपन का अधिकतर हिस्सा गांव में ही गुजरा था। किन्तु ज्यों ही स्कूल जाने लायक हुए, उन्हें अब्बू ने शहर बुलवा लिया। जहां सचिवालय में नौकरी करते थे। इस तरह जावेद का गांव आना–जाना काफी कम होता गया।

एक अर्से के बाद वह गांव लौटा तो गांव–घर के लोगों से मिलना–जुलना हो गया। मगर जब चचेरी भाभी जान सामने आईं तो उसके मुंह से निकल ही गया, "भाभी जान! अब तो अपने आप पर रहम कीजिए, अब और कितने बच्चों की अम्मा कहलाएंगी। मैं देख रहा हूं कि आपके पेट का वही हाल है जबकि नन्हें मियां की उम्र दो साल भी नहीं हुई। जरा इसका चेहरा तो देखिए। धड़ मोटा, पेट निकला हुआ और टांगें पतली। यह तो बीमार लगता है मुझे।"

"नहीं ऐसी कोई बात नहीं जावेद बाबू! सब कुछ खा–पी तो रहा है मशाअल्लाह! बस उम्र के लिहाज से चल फिर नहीं रहा है।" भाभी जान ने अपनी सफाई पेश की।

"यही तो मैं भी कह रहा हूं। अब यह तमाशा बन्द कीजिए।" "मैं क्या कर सकती हूं। बच्चे तो खुदा की देन हैं।" भाभी का जवाब था।

"इससे तो मुझे भी इंकार नहीं मगर आप यह बात समझने की कोशिश क्यों नहीं करतीं कि खुदा ने यह कब कहा कि घर में ढेर सारे बच्चे होने चाहिए, चाहे आमदनी हो या नहीं?" यह सुनकर भाभी खामोश हो गईं।

6/2, हारून नगर कालोनी,
फुलवारी शरीफ, पटना–801505

बालिका श्रमिक, एक राष्ट्रीय समस्या

रवि प्रकाश यादव

देश में करोड़ों की संख्या में गांव और शहर में बालिका श्रमिक कई खतरनाक तथा गैर खतरनाक कार्यों में लगी हैं। इन बालिकाओं की मजदूरी सबसे कम मेहनताना पाने वाले "बाल मजदूरों" से भी कम है। सुबह 6 बजे से शाम के 8 बजे तक कार्य करना सामान्य–सी बात है। कार्य स्थल भी इनके लिए सुरक्षित नहीं है। इनके ऊपर सदैव यौन शोषण की आशंका की तलवार लटकती रहती है। पूरी निष्ठा एवं ईमानदारी से काम करने के बावजूद इनको सौंपी जाने वाली जिम्मेदारियां छोटी–मोटी तथा सामान्य तरह की होती हैं। शहर के कई खतरनाक उद्योगों में इनको कार्य करते हुए देखा जा सकता है जिसे तालिका 1 में दिखाया गया है। इन सब कार्यों के अलावा – पापड़ बेलने, अचार बनाने, कपड़ा सिलने, कागज की थैलियां बनाने, पैकिंग करने, चिकेन इम्ब्राइडरी आदि के कार्यों में भी बालिका श्रमिक कार्यरत हैं।

इन सर्वेक्षणों में पाया गया कि जिन इलाकों में पानी का अभाव है वहां छोटी–छोटी लड़कियां कई किलोमीटर चलकर पीने का पानी लाती हैं। इन घरेलू कामों को यदि बाजार मूल्य पर तौला जाये तो एक बच्ची अपने बाल्यकाल से शादी होने तक घरेलू काम में मदद करके परिवार को लगभग 60 हजार रुपये का लाभ पहुंचाती है। लेकिन घर में इसके इस श्रम की

तन्मयता से काम करती एक बालिका श्रमिक

तालिका 1

भारत में विभिन्न खतरनाक उद्योग में लगीं बालिका श्रमिक

क्र.सं.	उद्योग	स्थान	कार्यघंटे	मजदूरी
1.	माचिस एवं पटाखा उद्योग	तमिलनाडु	12	3–5 रु. प्रतिदिन
2.	रस्सी उद्योग	केरल	11	15 रु. प्रतिदिन
3.	अगरबत्ती उद्योग	कर्नाटक	12	12 रु प्रतिदिन
4.	कांच और चूड़ी उद्योग	उत्तर प्रदेश	13	20–40 रु प्रतिदिन
5.	ताला उद्योग	अलीगढ़	10	15 रु. प्रतिदिन
6.	जरीकार्य	वाराणसी	16	25 रु प्रतिदिन
7.	कालीन उद्योग	भदोई	18	5–7 रु. प्रतिदिन
8.	बीड़ी उद्योग	आंध्र प्रदेश बिहार	12	10 रु प्रतिदिन
9.	पीतल वर्तन उद्योग	मुरादाबाद	12	8 रु. प्रतिदिन
10.	चीनी मिट्टी वर्तन	खुर्जा	13	12 रु. प्रतिदिन
11.	चमड़ा उद्योग	आगरा एवं कानपुर		10 रु प्रतिदिन

कोई कीमत नहीं। देश में लाखों की संख्या में केवल "घरेलू बालिका श्रमिक" हैं, जिनके कार्य करने का समय सुबह 5 बजे से आरंभ होकर रात्रि को समाप्त होता है।

एक सर्वेक्षण के अनुसार बिहार का छोटा नागपुर, पश्चिम बंगाल का मुर्शीदाबाद जिला, तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश तथा राजस्थान के सूखाग्रस्त इलाकों के अलावा मध्य प्रदेश के बिलासपुर, और रायपुर जिले के दलाल बड़े शहरों के अनेक परिवारों में 10 वर्ष से भी छोटी लड़कियों को घरेलू कार्य करने के लिए पहुंचाने का कार्य करते हैं।

नीरा बुर्रा के "वार्न टू वर्क 1997" के अनुसार भारत में 33 लाख श्रमिक बीड़ी उद्योग में लगे हैं जिसमें 10 प्रतिशत अर्थात 3 लाख 30 हजार बाल श्रमिक हैं। बीड़ी उद्योग में काम करने वाली बालिका श्रमिकों की बड़ी संख्या है। वयस्क श्रमिक को एक हजार बीड़ी बनाने पर 30 रुपये मिलते हैं वहीं बालिका श्रमिक को 15 रुपये मिलते हैं। ये लड़कियां प्रतिदिन लगभग 400–600 बीड़ियां बना लेती हैं और औसत रूप से 7.50 रुपये पाती हैं। बीड़ी बनाने के कार्य में रात–दिन तंबाकू के साये में रहने से इनके फेफड़ों एवं उदर में निकोटीन का जहर फैलता है। फलतः इन बालिकाओं को कम उम्र में ही श्वास तथा दमे की बीमारियां हो जाती हैं।

एक रिपोर्ट के अनुसार मध्य प्रदेश के भोपाल, सागर, जबलपुर, राजस्थान के टोंक, कोटा, महाराष्ट्र के विदर्भ, उड़ीसा के संभलपुर, तमिलनाडु के त्रिचिरापल्ली, केरल के त्रिचुर, बिहार के भागलपुर, बेगुसराय, जमुई बांका, मुंगेर के बीड़ी उद्योग में अधिकांश श्रमिक टी. बी. की शिकार पाईं गईं हैं। नीरा वुर्रा के अनुसार जयपुर के रत्नपालिश उद्योग में लगे 13 प्रतिशत बाल श्रमिक लगातार आंख गड़ाकर काम करने से 'आंख की कमजोरी' के शिकार हो जाते हैं। इस उद्योग में काम करने वाली बालिकाओं को 30 वर्ष की उम्र के बाद कम दिखाई देने लगता है। राष्ट्रीय श्रम संस्थान, उत्तर प्रदेश के अनुसार केरल के क्विलोन में 20 हजार बाल श्रमिक आठ बड़े मत्स्य प्रसंस्करण यंत्र में मछली छीलने के काम में लगे हैं। इस कार्य में काफी संख्या में बालिकाएं भी लगी हैं। मछली के तेज गंध वाले वातावरण में काम करने से इन बच्चियों को चर्म रोग जैसी बीमारी होने की संभावना रहती है। शिवकाशी के पटाखा और दियासलाई उद्योग में बारूद की गंध में काम करना और दुर्घटना होना आम–सी बात हो गई है।

अंतर्राष्ट्रीय स्वास्थ्य संगठन द्वारा चेतावनी दी गई है कि 'कच्ची उम्र' में लड़कियों को स्वास्थ्य के लिए हानिकारक कार्यों में झोंक देने के गंभीर मानसिक और शारीरिक प्रभाव होते हैं। इनमें से अनेक आगे चलकर विचित्र बीमारियों से ग्रसित हो जाती हैं जिसका बचपन में माता–पिता को जरा भी आभास नहीं होता। दूसरी ओर *चाइल्ड लेबर एक्शन* नेटवर्क की रिपोर्ट में बताया गया है कि चूंकि सभी भयावह रोग बड़ी उम्र में सामने आते हैं, अतः मां–बाप को बालिका पर मजदूरी के कुप्रभावों के बारे में समझाना अत्यंत कठिन हो जाता है।

जिस प्रकार से बालिका श्रमिकों का स्वास्थ्य उपेक्षित है उसी प्रकार से शिक्षा भी उपेक्षित है। यदि केरल की भांति पूरे हिन्दुस्तान में

तालिका 2

भारत के बीड़ी उद्योग में 'बालिका श्रमिक'

क्र.सं.	प्रांत	बीड़ी उद्योग क्षेत्र में लगी बालिकाएं
1.	मध्य प्रदेश	भोपाल, सागर, जबलपुर,
2.	राजस्थान	टोंक
3.	महाराष्ट्र	विदर्भ
4.	आंध्र प्रदेश	
5.	उड़ीसा	संभलपुर
6.	केरल	त्रिचुर
7.	तमिलनाडु	त्रिचिरापल्ली
8.	बिहार	बेगुसराय, भागलपुर, बांका, जमुई, मुंगेर

स्रोत : 1. नीरा वुर्रा 'वार्न टू वर्क', 1997

2. जोसेफ गाथिया, भारत में बालिका मजदूर 1997

बालिकाओं की शिक्षा पर ध्यान दिया जाए तो काफी हद तक बालिका श्रम प्रथा पर नियंत्रण पाया जा सकता है। केरल में बालिका श्रम सहभागिता दर एक प्रतिशत से भी कम है और बालिका श्रमिकों की संख्या एक लाख से भी कम (जनगणना 1991) है।

शहर में कार्यरत बालिकाएं 77 प्रतिशत निरक्षर हैं और 10 प्रतिशत किसी तरह से कुछ लिख–पढ़ सकती हैं जबकि गांव में बालिका श्रमिकों में 89 अनपढ़ हैं। स्पष्ट है शहर की तुलना में ग्रामीण बालिका श्रमिकों में लगभग 12 प्रतिशत अधिक अशिक्षा है। (तालिका 3)।

की योग्यता बढ़ाती है और शिक्षा के कारण समुदाय में उनकी मान–प्रतिष्ठा बढ़ती है। शिक्षा से लड़कियों को व्यक्तिगत और राष्ट्र के नागरिक के रूप में अपने अधिकारों का बुनियादी ज्ञान होता है।

भारत सरकार ने बालिकाओं की उन्नति और विकास के लिए कई उपाय किए हैं। सर्वप्रथम तो कई कानून बना कर बालिका श्रम को गैरकानूनी घोषित कर दिया है। किसी भी नियोजन में बालिकाओं को नियोजित नहीं किया जा सकता है। भारत सरकार द्वारा बालिका श्रम निषेध से संबंधित कई कानून हैं। जैसे – (1) बाल बंधुआ श्रम अधिनियम 1933 (2) कारखाना अधिनियम 1948 (3) बागान अधिनियम 1951 (4) खान अधिनियम 1952 (5) मोटर ट्रांसपोर्ट मजदूर अधिनियम 1961 (6) बीड़ी एवं सिंगार मजदूर अधिनियम 1966 (7) बाल श्रम (उन्नमूलन तथा नियमन) अधिनियम 1986।

तालिका 3

भारत में बालिका श्रमिकों की शैक्षणिक स्थिति (प्रतिशत में)

क्र.सं.	शिक्षास्तर	गांव में	शहरों में	कुल
1.	निरक्षर	89.93	77.25	88.14
2.	साक्षर	5.58	10.92	5.94
3.	प्राथमिक शिक्षा	4.81	9.99	5.16
4.	माध्यमिक शिक्षा	0.65	1.64	0.72
5.	मैट्रिक/सेकेंडरी	0.03	0.19	0.04
6.	इंटर/हायर सेकेंडरी	–	0.01	–
7.	प्री यूनिवर्सिटी	–	–	–
	योग	100	100	100
	संख्या (दस लाख में)	3.50	0.26	3.76

जोसेफ गाथिया के अनुसार लड़कों की अपेक्षा लड़कियों में पढ़ाई छोड़ने का प्रतिशत अधिक है। 100 लड़कों की तुलना में मात्र 54 लड़कियां ही स्कूल में भर्ती की जाती हैं। 11 से 14 वर्ष की आयु की 29 प्रतिशत लड़कियां ही स्कूल जाती हैं जबकि लड़कों में यह प्रतिशत 50 से ऊपर है। हाई स्कूल के बाद तो 100 में से मात्र 14 लड़कियां ही उच्च शिक्षा प्राप्त कर पाती हैं। सेंटर आफ कंसर्न फार चाइल्ड लेबर के अनुसार ग्रामीण बालिका मजदूरों में शिक्षा का प्रतिशत 10 से भी कम है जबकि प्रो. उषा नायर के अनुसार शहरी क्षेत्रों की बालिका मजदूरों में शिक्षा का प्रतिशत 15 से 20 के बीच है। शिक्षा स्त्रियों को सामर्थ्य देती है। शिक्षा स्त्रियों के पैसा कमाने

इसके अतिरिक्त भारत सरकार द्वारा 1994 में राष्ट्रीय बाल श्रम उन्नमूलन प्राधिकारण का गठन किया गया है। राष्ट्रीय श्रम शिक्षा परियोजना के तहत विशेष विद्यालय चलाए जा रहे हैं। बाल विकास नीति, बाल श्रम नीति तथा भारतीय संविधान में बालिका मजदूरों को राहत देने के कई उपाय किए गए हैं। गरीबी उन्मूलन एवं ग्रामीण रोजगार के कई कार्यक्रमों में बालिका मजदूरों के परिवारों को काम देने और आर्थिक सहायता देने की व्यवस्था की गई है।

हमें बालिका श्रम उन्मूलन के लिए इस समस्या पर चौतरफा बार करना होगा। पहला, यह कि समाज को बालिकाओं को संरक्षण प्रदान करने के लिए इनके माता–पिता को उतनी आय प्रदान करनी होगी जिससे उनका उचित रूप से पालन–पोषण हो सके। दूसरे, देश में केंद्रीय श्रम मंत्रालय द्वारा चल रही 10 राष्ट्रीय बाल श्रमिक परियोजनाओं में लाभान्वितों की संख्या में कम से कम 40 प्रतिशत बालिका मजदूर हों यह सुनिश्चित करना होगा। तीसरे, पैसे के अभाव में जीने वाली इन बालिकाओं को व्यापक पैमाने पर गांव में, कस्बों में, शहरी स्लमों में झुग्गी–झोपड़ियों में मुफ्त शिक्षा प्रदान करने का कार्य करना होगा। इसके अतिरिक्त प्रतिदिन मुफ्त भोजन की व्यवस्था करनी होगी। इसके साथ–साथ प्रतिदिन या प्रति माह कुछ रुपये इन बालिकाओं को 'आर्थिक सहायता' के रूप में देने होंगे जिससे निर्धन अभिभावक को यह न महसूस हो कि उसके बच्चे जो पहले काम करके पैसे लाते थे अब काम छोड़कर पढ़ने के कारण उन पर एक 'आर्थिक बोझ' बन गए हैं। चौथे, जनसंचार के विभिन्न माध्यमों यथा–समाचार पत्र, रेडियो, दूरदर्शन पोस्टरों द्वारा समाज के कोने–कोने में इस बात को पहुंचाना होगा कि 'बालिका श्रम' एक सामाजिक बुराई है, यह कार्य राष्ट्र की अमूल्य सम्पत्ति को बर्बाद करने जैसा है। पांच, प्रभात फेरियों, नुक्कड़ नाटकों, विभिन्न कार्यक्रमों के माध्यम से जनता में इस समस्या के खिलाफ एक 'जागृति' पैदा करनी होगी। छठी, बात जो व्यक्ति मानव–मूल्यों के पक्षधर हैं उनको आगे बढ़कर इस आंदोलन को एक दिशा प्रदान करनी होगी। वो व्यक्ति जो गैर बराबरी और शोषण के खिलाफ लड़ाई को अपना अंतिम उद्देश्य मानते हैं उनको अपनी भूमिका सुनिश्चित करनी होगी। सातवीं, बालिका श्रमिकों से संबंधित विभिन्न विषयों पर वृहद पैमाने पर शोध, सेमिनार आदि आयोजित किए जाने चाहिए।

शोभा सदन, लंगूर गली,
पटना सिटी, पटना–8

ग्रामीण विकास के लिए

ऊसर भूमि सुधार एवं प्रबन्ध

गंगाशरण सैनी

देश में लगभग 70 लाख हेक्टेयर भूमि क्षार एवं लवणों से प्रभावित होने के कारण ऊसर पड़ी हुई है, जिसमें से 45 लाख हेक्टेयर भूमि लवणता और 25 लाख हेक्टेयर भूमि क्षारीयता से प्रभावित है। उत्तर भारत में ऐसी मृदाओं का क्षेत्रफल 25 लाख हेक्टेयर है, जिसमें से अकेले उत्तर प्रदेश में 12.95 लाख हेक्टेयर क्षेत्रफल ऊसर है। भारत में क्षार और लवण प्रभावित मृदाओं का प्रदेशवार क्षेत्रफल तालिका 1 मे दर्शाया गया है :

तालिका 1
भारत में क्षार और लवण प्रभावित मृदाओं का प्रदेशवार क्षेत्रफल

प्रदेश	क्षेत्रफल (लाख हेक्टेयर)
उत्तर प्रदेश	12.96
गुजरात	12.14
पश्चिमी बंगाल	8.50
राजस्थान	7.28
पंजाब	6.89
महाराष्ट्र	5.34
हरियाणा	5.26
उड़ीसा	4.04
कर्नाटक	4.04
मध्य प्रदेश	2.24
आंध्र प्रदेश	2.42
दिल्ली	0.16
केरल	0.16
बिहार	0.04
तमिलनाडु	0.04
कुल योग	69.50 या 70.00

ऊसर भूमि में किसी प्रकार की वनस्पति नहीं उगती है, यदि उगती भी है तो वह भली–भांति वृद्धि नहीं कर पाती है। वैज्ञानिकों के अनुसार अधिक पैदावार लेने के लिए मृदा का रसाकर्षण दाब 1.3 से 1.8 एटमास्फियर तक होता है। रसाकर्षण दाब अधिक होने के कारण पौधों के अन्दर उपस्थित पानी एवं खनिज पदार्थ उल्टे खिंचकर मृदा में आ जाते हैं, जिससे पौधे सूखकर मर जाते हैं। इन मृदाओं में जल विलय लवणों की मात्रा अधिक होने के कारण मृदा संरचना बिगड़ जाती है, जिसके फलस्वरूप मृदा में वायु संचार ठीक प्रकार से नहीं हो पाता है और पौधों को पोषक तत्व भी उचित मात्रा में नहीं मिल पाते हैं। मृदा जीवाणुओं के निष्क्रिय हो जाने के कारण अप्राप्य नाइट्रोजन प्राप्य नाइट्रोजन में परिवर्तित नहीं हो पाती है। दूसरी ओर प्राप्य फास्फोरस अप्राप्य फास्फोरस में परिवर्तित हो जाता है। जिसके कारण पौधे उसे उपयोग नहीं कर पाते हैं। कैल्शियम निक्षालन द्वारा नष्ट हो जाता है जिससे वह भी पौधों को नहीं मिल पाता है। इन मृदाओं में 'बोरोन' नामक सूक्ष्म पोषक तत्व की अधिकता होती है जिसका फसल की वृद्धि पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि ऊसर मृदा में पौधों का जीवित रहना बहुत कठिन है। ये मृदाएं मृदा–वैज्ञानिकों के लिए एक चुनौती है।

यदि इन क्षेत्रों में उचित विधि से एक योजनाबद्ध ऊसर सुधार कार्यक्रम अपनाया जाए तो पहले वर्ष से ही इन मृदाओं से पैदावार ली जा सकती है। ऊसर सुधार योजना की सफलता सुधार, तकनीक का क्रमबद्ध पालन, किसानों की लगन और धैर्य पर विशेष रूप से निर्भर करता है। अतः ऊसर सुधार कार्यक्रमों को प्रारम्भ करने से पूर्ण सभी उचित उपाय सुनिश्चित करना नितान्त आवश्यक है।

ऊसर सुधार कार्यक्रम को प्रारम्भ करने से पूर्व यह पता करना आवश्यक है कि भूमि किस प्रकार की है? लवण प्रभावित मृदाओं को इनमें विद्यमान लवणों के आधार पर निम्न दो भागों में विभक्त किया जाता है –

1. लवणीय मृदा

इस प्रकार की मृदाओं में घुलनशील लवण बहुत अधिक मात्रा में पाए जाते हैं। मुख्यतः ये घुलनशील लवण, सोडियम, कैल्शियम और मैगनीशियम के क्लोराइड और सल्फेट होते हैं। इन मृदाओं का क्षारांक (पी.एच.मान) 8.5 से कम होता है। इनकी विद्युत चालकता 4 डेसी. सीमेन्स प्रति मीटर से अधिक होती है। इन मृदाओं में विनिमय सोडियम की संतृप्तता 15 प्रतिशत से कम पाई जाती है। इन मृदाओं में घुलनशील लवण फसलों को दो प्रकार से क्षति पहुंचाते हैं –

- भूमि जल में लवणों की मात्रा बढ़ने से पौधों के जमाव एवं बढ़वार पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।
- कुछ पोषक तत्व एक सीमा तक फसलों के लिए लाभदायक होते हैं, परन्तु इस सीमा के बाद इनकी अधिकता अधिकांश फसलों के लिए हानिकारक होती है जैसे नीबू वर्गीय पौधे, अंगूर आदि के लिए क्लोराइड एवं बोरोन हानिकारक होते हैं।

2. क्षारीय मृदा

इस प्रकार की मृदाओं में विनिमय सोडियम की संतृप्तता 15 प्रतिशत से अधिक और क्षारांक (पी.एच.मान) 8.5 से अधिक होता है। इनमें घुलनशील लवणों की अधिकता के कारण विद्युत चालकता भी 4 डेसी सीमेन्स प्रति मीटर से अधिक हो सकती है। विनमय सोडियम की मात्रा में वृद्धि होने के कारण जल एवं वायु की गति कम हो जाती है जिसके कारण भूमि में जल संचय कम हो जाता है। भूमि की खराब भौतिक दशा के कारण कृषि कार्यों में

भूमि सुधार के लिए ग्लास हाऊस टेक्नालाजी जैसे उपाय अपनाए जाते हैं

बाधा पड़ती है क्योंकि या तो भूमि अधिक गीली होती है या बिलकुल सूख जाती है। इसलिए इन मृदाओं में थोड़ी–सी वर्षा होने पर बहुत दिनों तक गंदा पानी एकत्रित रहता है। अधिक क्षारांक के कारण जिंक की उपलब्धता कम हो जाती है। क्षारीयता इतनी अधिक हो जाती है कि इन मृदाओं में खेती करना दूभर हो जाता है।

तालिका 2

लवणों के प्रति फसलों की सहनशीलता

सहनशीलता (विद्युत चालकता 12 डे.सी. सीमेन्स मीटर तक बोआई हेतु)	कम सहनशीलता (विद्युत चालकता 6 डे.सी. सीमेन्स मीटर तक बोआई हेतु)	असहनशीलता विद्युत चालकता 4 डे.सी. सीमेन्स मीटर तक बोआई हेतु
जौ	गेहूं	लोबिया
चुकन्दर	मोठ	चना
पालक	धान	मटर
तोरिया	ज्वार	मूंगफली
कपास	मक्का	ग्वार
	सूरजमुखी	तिल
	आलू	
	मूंग	

नोट : प्रत्येक समूह में फसलों को सहनशीलता के घटते हुए क्रम में रखा गया है।

सुधार तकनीक

लवणीय एवं क्षारीय मृदाओं के सुधार के तरीकों में भिन्नता पाई जाती है। जिनका उल्लेख नीचे किया गया है :

लवणीय मृदा का सुधार

लवणीय मृदाओं का सुधार इनमें पाए जाने वाले लवणों का निक्षालन करके किया जाता है। इस कार्य हेतु चुनी गई भूमि को वर्षा से पूर्व समतल करके भूमि की समतलता के आधार पर ऊंची मेड़बन्दी करके छोटी–छोटी क्यारियां बना लेनी चाहिए। इन क्यारियों में वर्षा का जल एकत्रित होने देना चाहिए। जरूरत पड़ने पर सिंचाई से भी पानी उन क्यारियों में भरा रखना चाहिए। क्यारियों मे पानी भरा रहने से इन मृदाओं में पाए जाने वाले हानिकारक लवण रिस कर भूमि के अन्दर चले जाते हैं और भूमि कृषि योग्य हो जाती है। इस प्रकार की भूमि के अन्दर (जड़ की गहराई के नीचे) से जल निकास व्यवस्था लाभदायक होती है।

लवणयुक्त जल इन जल निकास नालियों से आता है किसी बेकार नाले या इसी कार्य के लिए निर्मित तालाबों में एकत्रित किया जा सकता है। ऐसी स्थिति में तालिका–2 में दी गई फसलों की खेती की जा सकती है।

क्षारीय भूमि का सुधार

इन मृदाओं की प्रमुख समस्या भूमि में विनिमय सोडियम का अधिक होना होता है जिसे पानी के साथ निक्षालन से दूर नहीं किया जा सकता है। अतः इन मृदाओं को सुधारने हेतु जिप्सम, पाइराइट, सल्फर आदि का उपयोग करना अनिवार्य होता है। क्षारीय मृदा सुधार की प्रक्रिया विभिन्न चरणों में पूरी होती है। सफल क्षारीय मृदा सुधार हेतु यह आवश्यक है कि इन क्रियाओं का क्रमवार पालन किया जाए जिसके लिए निम्नांकित प्रक्रियाएं यथाक्रम में अपनानी चाहिए।

1. मृदा समतलीकरण और मेड़बंदी

सफल क्षारीय मृदा सुधार हेतु सर्वप्रथम तथा आवश्यक कार्य खेत का भली भांति समतलीकरण करना होता है ताकि मृदा सुधारकों और सिंचाई का समान रूप से उपयोग किया जा सके। उसके उपरांत भूमि को 45 सेंमी.. ऊंची मेंड़ों को (जिससे पानी लगने के बाद मेंड़ बैठकर 30 सेंमी. से कम हो जाए) छोटी–छोटी क्यारियों में विभक्त कर देना चाहिए। मेंड़ों की ऊंचाई कम रखने से क्यारी का पानी बाहर और बाहर के पानी के अन्दर आने की सम्भावना रहती है, जो मृदा सुधार में बाधक होता है। क्यारियों का आकार मृदा की समतलता पर निर्भर करता है अतः क्यारियां ऐसी बनानी चाहिए, जिससे क्यारी में एक समान पानी लगाया जा सके। साधारणतया 1/20 हेक्टेयर की क्यारियों का निर्माण करना चाहिए।

2. सिंचाई और उचित जल निकास व्यवस्था

क्षारीय सुधार हेतु समुचित एवं सुनिश्चित सिंचाई व्यवस्था का होना नितान्त आवश्यक माना जाता है जिसके लिए नलकूप या पम्पसेट द्वारा सिंचाई होना सर्वोत्तम माना जाता है। 10 सेमी. डिलीवरी वाला नलकूप जिसमें 10 लीटर प्रति सैकेण्ड जल प्राप्त होता है, 4–5 हेक्टेयर क्षेत्र के सुधार के लिए पर्याप्त होता है। खेत में पर्याप्त सिंचाई के लिए नालियों का निर्माण कर लेना चाहिए ताकि सभी क्यारियों को ठीक से भरा जा सके। चूंकि प्रयोगों से पता चला है कि पूरा पानी रिस नहीं पाता है अतः उचित जल निकास हेतु ढाल के सहारे 10–15 से.मी. गहरी निकास नालियों का निर्माण कर लेना चाहिए। इन जल निकास नालियों को किसी तैयार की गई नाली से जोड़ देना चाहिए जिससे फालतू पानी जल निकास नालियों में होता हुआ ऐसे स्थान पर पहुंच जाए जो अन्य कृषि योग्य मृदाओं को कुप्रभावित न करे।

3. मृदा एवं जल का नमूना लेकर जांच हेतु भेजना

अब आपके पास नमूना लेने के लिए समतल किया गया खेत तैयार है। अब खेत में 8–10 ऐसे स्थानों पर चिन्ह लगायें जो सारे खेत द्योतक हों।

यदि ऐसे खेत का नमूना लेना हो जिसमें ऊसर के मात्र धब्बे हों तो धब्बे का और सामान्य मृदा का नमूना अलग–अलग लेना चाहिए। नमूना लेने की गहराई अपनाए जाने वाले फसल चक्र पर निर्भर करती है। यदि उथली जड़ वाली फसलों जैसे धान, गेहूं की खेती करनी है तो 30 सेमी. गहराई तक नमूना लेना पर्याप्त होता है। यदि गहरी जड़ वाली फसल जैसे कपास उगानी है तो 60 सेमी. तक नमूना लेना चाहिए। यदि बाग लगाना हो तो 150 से 180 सेमी. गहराई तक नमूना लेना चाहिए।

क्षारीय मृदा जांच हेतु प्रत्येक स्थान से पहला नमूना भूमि की ऊपरी 0–15 सेमी. गहराई का लें। दूसरा नमूना 15–30 सेमी. की गहराई का, तीसरा 30–60 सेमी. और क्रमशः 30 सेमी. के अन्तर पर शैक्षिक गहराई का नमूना लें। किसी भी गहराई पर मिट्टी की 2.5 सेमी. समान मोटाई की परत खुरचें। इस प्रकार 30 सेमी. तक के नमूने तो खुरपी एंव फावड़े की सहायता से लिए जा सकते हैं परन्तु 30 सेमी. से अधिक गहराई के नमूनों के लिए 'आगर' नामक यंत्र का उपयोग करना चाहिए।

अब प्रत्येक चिन्ह लगाए गए स्थान से समान गहराई के नमूनों को आपस में मिलाकर और प्रत्येक गहराई से 500 ग्राम का एक–एक नमूना लें और कपड़े की साफ थैली में भर कर बांध दें। अब इन थैलियों के साथ एक–एक पूर्ण रूप से भरा हुआ नमूना पत्र बांध दें, जिसमें ऊसर का नाम, किसान का नाम, ग्राम, डाकखाना, जिला, प्रदेश, फसल चक्र, खेत का खाता नं. पहचान, नमूने की गहराई का उल्लेख होना चाहिए।

मृदा का नमूना कभी भी वर्षा, सिंचाई, खाद प्रयोग या फसल ठूंठ जलाने के उपरान्त, सिंचाई नालियों, मेंड़ों, वृक्ष के नीचे, खाद के ढेर, खलिहान या सड़क से न लें।

पानी का नमूना

प्रायः ऐसा देखने में आया है कि भूमि में लवणता एवं क्षारीयता की समस्या सिंचाई के पानी के दोष से उभरती है। इसके अलावा यदि लवणीय या क्षारीय मृदा का सुधार करना है तो यह आवश्यक है कि जल निर्मल हो। इसलिए पानी की जांच करवाना नितान्त आवश्यक और महत्वपूर्ण कार्य है।

पानी का नमूना प्लास्टिक की बोतल में लें। यदि प्लास्टिक की बोतल उपलब्ध न हो तब शीशे की बोतल का उपयोग करें। पानी का नमूना लेने से पूर्व नमूना लिए जाने वाले पानी से 3–4 बार भली–भांति साफ कर लेना चाहिए। यदि बहते हुए पानी का नमूना लेना है तो सिंचाई नालियों से नमूना लें। यदि किसी नलकूप या पम्पसेट के पानी का नमूना लेना है तो नलकूप या पम्पसेट के कम से कम एक घंटे चल जाने के बाद ही पानी का नमूना लेवें। पानी का नमूना लगभग 500 मिली. लेना चाहिए। नमूना जांच के लिए भेजने से पूर्व उसे भली–भांति बंद कर देना चाहिए यदि सम्भव हो तो मोम से सील कर दें। उस पर एक पर्ची चिपका दें जिस पर किसान का नाम, पता, सिंचाई का स्रोत आदि लिखा हो।

सिंचाई के पानी की जांच कराने से यह लाभ होगा कि यदि सिंचाई का पानी निर्मल नहीं है तो उसके सुधार हेतु अतिरिक्त सुधार का उपयोग करना होगा।

मृदा एवं जल के नमूने की जांच अपनी निकटतम प्रदेश सरकार की मृदा परीक्षण प्रयोगशाला या कृषि विश्वविद्यालय की मृदा परीक्षण प्रयोगशाला या उर्वरक उत्पादक संस्थाओं

के कृषि सेवा केन्द्र द्वारा करा सकते हैं।

मृदा सुधारकों का उपयोग

क्षारीय मृदाओं के सुधार हेतु मुख्यतः दो प्रकार के सुधारकों का उपयोग किया जाता है यथा 1. जिप्सम और 2. पाइराइट। ये दोनों ही मृदा सुधारक उपयोगी पाए गए हैं। 90 प्रतिशत जिप्सम राजस्थान से आता है अतः पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार में पहुंच कर अधिक भाड़े के कारण कुछ महंगा हो जाता है। पाइराइट की खानें बिहार में हैं इसलिए बिहार और पूर्वी उत्तर पूर्वी और निकटवर्ती क्षेत्रों में कम भाड़े के कारण सस्ता पड़ता है। जिन मृदाओं में कैल्शियम की मात्रा अधिक होती है उनमें जिप्सम की तुलना में पाइराइट का उपयोग लाभदायक होता है। सुधारक के रूप में प्रयोग आने वाले जिप्सम की शुद्धता 70 प्रतिशत से कम नहीं होनी चाहिए। प्रयोग से पूर्व यह सत्यापित कर लेना चाहिए कि जिप्सम का इतना बारीक चूर्ण कर लिया जाए कि वह 2 मि.मी. की छलनी से पार हो सके। इसी प्रकार पाइराइट भी पिसी हुई प्रयोग करनी चाहिए। पाइराइट का 5 मि.मी. का चूर्ण उपयुक्त रहता है।

प्रयोग विधि

जिप्सम और पाइराइट की प्रयोग विधि में अन्तर है। यदि जिप्सम प्रयोग में लाना है तो धान की रोपाई के 15 दिन पूर्व भूमि की सतह पर जिप्सम की आवश्यक मात्रा समान रूप से छिटक कर जुताई कर भूमि की 10 सेमी. सतह में भली–भांति मिलाकर खेत में लगभग 22.5 सेमी. पानी भर देना चाहिए।

यदि भूमि में पाइराइट का प्रयोग करना है तो खेत की पहले हल्की सिंचाई कर दें। ओट आने पर खेत की जुताई करके जुते हुए खेत में पाइराइट आवश्यक मात्रा में समान रूप से छिटक दें और खेत को एक सप्ताह तक इसी प्रकार रहने दें जिससे पाइराइट का आक्सीकरण हो सके। पूरे एक सप्ताह के बाद खेत में 22.5 सेमी. पानी लगा दें। दोनों ही दशाओं में पानी खेत में कम से कम 15 दिन तक लगातार भरा रहना चाहिए।

जिप्सम और पाइराइट की आवश्यक मात्रा मृदा जांच से पता चलती है। मिट्टी के क्षारांक से जिप्सम या पाइराइट की मात्रा सरलता से आंकी जा सकती है।

सुधारकों की सम्पूर्ण मात्रा का प्रयोग एक ही बार में लाभकारी होता है।

रिसाव और जल निकास

लगातार 15 दिन तक 15–20 सेमी. पानी भरे रहने से रासायनिक क्रिया और जल रिसाव से हानिकारक सोडियम लवण पानी में घुलकर भूमि में पौधों के जड़ क्षेत्र से नीचे चले जाते हैं। इन दिनों में भूमि सतह पर स्थिर पानी में घुलनशील लवण घुल जाते हैं। इसलिए इस पानी को जल निकास नालियों से पहले से निर्मित गड्ढों या बेकार नाले में एकत्रित कर लेना चाहिए।

फसल उत्पादन

ऊसर सुधार कार्यक्रम के दौरान फसल उत्पादन से एक तो अतिरिक्त आय प्राप्त हो जाती है। दूसरे, इससे कृषि क्रियाओं में भी सहायता मिलती है। उत्तरी भारत में धान खरीफ की सर्वोत्तम एवं उपयोगी फसल होती है क्योंकि विनिमय सोडियम और लवणता के प्रति सहनशीलता के अलावा इसकी जड़ें भूमि

सदस्यता कूपन

मैं/हम कुरुक्षेत्र का नियमित ग्राहक बनना चाहता हूं/चाहते हैं।

शुल्क : एक वर्ष के लिए 70 रुपये का
दो वर्ष के लिए 135 रुपये का
तीन वर्ष के लिए 190 रुपये का

(जो लागू नहीं होता, उसे कृपया काट दें)

डिमांड ड्राफ्ट/भारतीय पोस्टल आर्डर क्रमांक .... दिनांक .... संलग्न है।

नाम (स्पष्ट अक्षरों में) ....

पता ....

....

पिन ....

इस कूपन को काटिए और इस पृष्ठ की पिछली ओर बने बाक्स के नं. 3 में दिए गए पते पर भेजिए।

में निहित कैल्सियम कार्बोनेट को घोल देती हैं। जिसके कारण भूमि का सुधार होता है। दो–तीन वर्ष खरीफ में लगातार धान बोने के उपरान्त इसके स्थान पर अन्य फसलें जैसे – गेहूं, जौ, बरसीम, रिजका आदि को सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। बरसीम या रिजका चारे वाली फसलें होने के कारण अधिक क्षेत्र में नहीं उगाई जाती हैं। वैसे भी ऊसर भूमि में नाइट्रोजन एकत्रित करने वाले जीवाणुओं के स्ट्रेनों की कमी होती है। जिन स्थानों पर सिंचाई की सुनिश्चित एवं समुचित व्यवस्था है वहां पर गेहूं, ढैंचा अत्यन्त लाभप्रद फसलें हैं। अतः निम्नलिखित फसल चक्र इन मृदाओं के लिए उपयोगी होते हैं –

1. धान – गेहूं – ढैंचा
2. धान – जौ – ढैंचा
3. धान – जौ

इनमें से प्रथम फसल चक्र सर्वोत्तम पाया गया है। फसल चक्रों के अलावा घास एवं वृक्षारोपण सफल पाए गए हैं।

ऊसर में ढैंचा

परीक्षणों से ज्ञात हुआ है कि ऊसर भूमि में ढैंचा उगाना अत्यन्त उपयोगी होता है, क्योंकि इसकी जड़ें भूमि में जल एवं वायु आगमन को सुगम बनाती हैं। ढैंचा भूमि में सड़ने के उपरान्त जैविक अम्ल का निर्माण करता है जिसके कारण मृदा का क्षारांक (पी.एच. मान) कम हो जाता है जिसके कारण ऊसर में मौजूद जैविक पदार्थों की मात्रा में वृद्धि होने से मृदा की भौतिक, रासायनिक एवं जैविक संरचना में सुधार होता है। लगभग 60 किलोग्राम बीज प्रति हेक्टेयर की दर से बोना चाहिए। बीज को बोआई के एक रात पहले भिगो देना चाहिए। बीज की बोआई मध्य मई में छिटक कर करनी चाहिए। जल्दी बढ़वार हेतु 15–20 किलोग्राम नाइट्रोजन प्रति हेक्टेयर की दर एक महीने की फसल में उरिवेशन (टॉप ड्रेसिंग) के रूप में बिखेर देनी चाहिए। ढैंचा को लगभग 5–6 सिंचाइयों की आवश्यकता होती है। जिस दिन रोपाई करनी हो उसी दिन फसल को पाटा लगाकर गिरा देना चाहिए और मिट्टी पलटने वाले हल से मिट्टी में दवा देना चाहिए।

उपर्युक्त फसलों की नवीनतम किस्में उगानी चाहिए जिनके बारे में नीचे वर्णन किया गया है।

धान की किस्में

1. सी.एस.आर. 10
2. सी.एस.आर. 13
3. सी.एस.आर. 27

गेहूं की किस्में

1. के.एल.आर. 1–4
2. के.एल.आर. 19

राया की किस्म

1. सी.एस. 5

फसलों का जानवरों से बचाव

प्रायः ऐसा देखा गया है कि जिस क्षेत्र में किसान ऊसर का सुधार करते हैं उसके आस–पास वनस्पति नहीं उगती है। इस कारण सुधार के अन्तर्गत लिए गए क्षेत्रफल में पैदा होने वाली फसल को पालतू एवं जंगली जानवर चरकर बहुत क्षति पहुंचाते हैं जिसके कारण फसल की क्षति होने से ऊसर सुधार कार्यक्रम में भी बाधा पहुंचती है। अतः सुधार के अन्तर्गत लिए गए क्षेत्र को कंटीले तारों या कम से कम 4 फिट की ऊंची मेड़ से घेर देना चाहिए।

5ई/9बी, बंगला घाट, फरीदाबाद–121001 (हरियाणा)

1. हम दिल्ली से *योजना* **अंग्रेजी, हिन्दी, उर्दू, पंजाबी और उड़िया में**
कुरुक्षेत्र **हिन्दी और अंग्रेजी में**
आजकल **हिन्दी और उर्दू में**
और बच्चों की पत्रिका *बाल भारती* **हिन्दी में** प्रकाशित करते हैं।

2. डिमांड ड्राफ्ट/पोस्टल आर्डर निदेशक प्रकाशन विभाग को नई दिल्ली में देय होना चाहिए।

3. यह कूपन विज्ञापन और प्रसार संख्या प्रबंधक, प्रकाशन विभाग, ईस्ट ब्लाक 4, लेवल–7, आर.के. पुरम, नई दिल्ली–110066 के पते पर भेजिए।

4. सदस्य बनने के लिए आप हमारे निम्नलिखित केन्द्रों पर भी सम्पर्क कर सकते हैं:

प्रकाशन विभाग : पटियाला हाउस, तिलक मार्ग, नई दिल्ली–110001; सुपर बाजार (दूसरी मंजिल), कनाट सर्कस, नई दिल्ली–110001; कामर्स हाउस, करीमभाई रोड, बालार्ड पायर, मुंबई–400038; 8, एस्प्लेनेड ईस्ट, कलकत्ता–700069; राजाजी भवन, बेसेंट नगर, चेन्नई–600090; बिहार राज्य सहकारी बैंक बिल्डिंग, अशोक राजपथ, पटना–800004; निकट गवर्नमेंट प्रेस, प्रेस रोड, तिरुअनंतपुरम–695001; 27/6, राम मोहन राय मार्ग, लखनऊ–226019; राज्य पुरातत्वीय संग्रहालय बिल्डिंग, पब्लिक गार्डन्स, हैदराबाद–500004; प्रथम तल, 'एफ' विंग, केंद्रीय सदन, कोरा मंडल, बंगलौर–560034; सम्पादक, पेयोभरा, नौझम रोड, उजान बाजार, गुवाहाटी–1; सम्पादक, योजना (गुजराती), राम निवास, पालदी बस स्टाप के पास सरखेज रोड, अहमदाबाद

पत्र सूचना कार्यालय : सी.जी.ओ. काम्पलैक्स, 'ए' विंग, ए.बी. रोड, इंदौर (म.प्र.); 80, मालवीय नगर, भोपाल–462003; के–21, नंद निकेतन, मालवीय मार्ग, 'सी' स्कीम, जयपुर–302003

5. शुल्क प्राप्त होने के बाद नियमित रूप से पत्रिका के अंक मिलने शुरू होने में आठ से दस सप्ताह का समय लगता है।

निर्यात-आयात नीति और ग्रामीण अर्थव्यवस्था

वेद प्रकाश अरोड़ा

भूमंडलीकरण, बाजारीकरण उदारीकरण, और निजीकरण के वर्तमान दौर में अर्थव्यवस्था की मजबूती के लिए निर्यात मूलमंत्र बन गया है। इसे सौ रोगों का एकमात्र और कारगर इलाज माना गया है। अप्रैल 1997 से आरंभ निर्यात–आयात नीति के संदर्भ में कृषि उद्योग, श्रम और बुनियादी ढांचा क्षेत्रों में जो भी कदम उठाए गए हैं, वे इस लक्ष्य को भी ध्यान में रखकर उठाए गए हैं कि निर्यात में कैसे चौतरफा वृद्धि की जाए। वर्तमान वर्ष की निर्यात–आयात नीति उस व्यापक निर्यात–आयात नीति की ही अंतिम कड़ी है जो नौवीं पंचवर्षीय योजना की अवधि के साथ ही समाप्त हो जाएगी। प्रत्येक वर्ष की निर्यात–आयात नीति कुछ संशोधनों, परिवर्तनों और नवीनताओं के साथ लागू की जाती है। इस वर्ष की नीति, पिछले वर्ष की नीति का ही विस्तार कहा जा सकता है। वैसे समग्र निर्यात–आयात नीति के प्रमुख उद्देश्य हैं :

- विश्व बाजार के बढ़ते अवसरों का अधिक से अधिक लाभ उठाते हुए देश को विश्वव्यापी अर्थव्यवस्था की ओर बढ़ाना और उससे जोड़ना।
- उत्पादन बढ़ाने के लिए आवश्यक कच्चे माल, मध्यवर्तियों, संघटकों, उप भोज्य और पूंजीगत सामान की उपलब्धता बढ़ाकर निरंतर आर्थिक विकास को प्रोत्साहित करना।
- भारतीय कृषि, उद्योग और सेवाओं की प्रौद्योगिकीय क्षमता और कुशलता को बढ़ाना, रोजगार के नए अवसर पैदा करके उनकी होड़ लेने की क्षमता को बल प्रदान करना और गुणवत्ता के अंतर्राष्ट्रीय मानदण्ड हासिल करने की गति तेज कराना और
- उपभोक्ताओं को उचित मूल्य पर बढ़िया और बेहतर उत्पाद उपलब्ध करना।

इस वित्त वर्ष की नीति में विश्व बाजार में स्वतंत्र व्यापार का दायरा अधिक व्यापक बना देने का प्रयास है। विश्व बाजार से जुड़ना दोधारी तलवार की तरह है। इसमें कुछ खतरे निहित हैं तो अपना नाम चमकाने और आगे बढ़ने के सुनहरी अवसर भी हैं। विश्व बाजार की धकापेल एक चुनौती है तो निर्यात क्षेत्र में कुछ कर दिखाने का मौका भी। इसीलिए इस नीति में एक तरफ भूमण्डलीय व्यापार का

मुख्य धारा के साथ बहने की उज्ज्वल संभावनाओं और दूसरी तरफ अर्थव्यवस्था के महत्वपूर्ण क्षेत्रों में बढ़ते आयात के जोखिम के बीच एक ऐसा संतुलन कायम करना जरूरी हो गया है जो देश को निरंतर प्रगति पथ पर अग्रसर करता चला जाए। निर्यात–आयात नीति के अंतर्गत पिछले वर्ष 714 वस्तुओं और इस वर्ष 715 वस्तुओं को आयात कोटा प्रतिबंध से मुक्त कर दिया गया है। लेकिन अगर अंकुशों को हटाने के बाद विदेशी माल की

उद्यमियों, किसानों और मजदूरों के सतत प्रयत्नों और नई नीति के अंतर्गत उठाए गए सुविचारित कदमों का ही परिणाम है कि 2000–01 में देश के निर्यात में 20 प्रतिशत की वृद्धि हुई जो 18 प्रतिशत के निर्धारित लक्ष्य से दो प्रतिशत अधिक है।

बाढ़ आने का खतरा उत्पन्न हो जाए तो उसे रोकने के प्रावधानों को काम में लाया जा सकता है। कहीं लाइसेंस प्रणाली लागू कर तो कहीं सरकारी निगमों या निर्धारित संगठनों के माध्यम से माल के आयात पर निगरानी रखी जा सकती है। आयात–शुल्क बढ़ाकर भी विदेशी माल का प्रवाह रोका जा सकता है। उद्यमियों, किसानों और मजदूरों के सतत प्रयत्नों और नई नीति के अंतर्गत उठाए गए सुविवादित कदमों का ही परिणाम है कि 2000–01 में देश के निर्यात में 20 प्रतिशत की वृद्धि हुई जो 18 प्रतिशत के निर्धारित लक्ष्य से दो प्रतिशत अधिक है। यह उपलब्धि इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि दुनिया के बड़ी अर्थव्यवस्थाओं वाले दो देशों – अमरीका और जापान में मंदी का चक्र चलता रहा और इधर भारत में दलालों के खेल, सेबी की कमजोरी तथा कुछ अन्य कारणों से शेयर बाजार में लड़खड़ाहट बनी रही और रुपये के डालर मूल्य में भी गिरावट का रुख रहा। इस प्रतिकूल परिदृश्य के बावजूद अगर निर्यात का ग्राफ ऊंचा चढ़ता चला गया तो आयात भी घटता चला गया। आयात पिछले वर्ष की तुलना में मात्र 0.27 प्रतिशत ही बढ़ा। इन सबका सुखद परिणाम यह हुआ कि व्यापार घाटा पहले से 11.60 प्रतिशत कम रहा। लेकिन तत्कालीन वाणिज्य मंत्री मुरासोली मारन के अनुसार इससे संतोष करके बैठ जाने का वक्त नहीं। विकास दर में अधिक वृद्धि द्वारा विश्व व्यापार में भारत की भागीदारी बढ़ाकर एक प्रतिशत करनी होगी। इस काम में कृषि, कृषि उत्पाद और ग्रामीण क्षेत्र के उद्योग ज़बरदस्त योगदान कर सकते हैं। यहां इस तथ्य की अनदेखी नहीं की जा सकती कि भारत के सकल घरेलू उत्पाद में एक तिहाई योगदान कृषि–क्षेत्र का है। यह भारतीय अर्थव्यवस्था की प्राण–शक्ति है। देश के कुल निर्यात के लगभग 35 प्रतिशत का श्रेय इसी क्षेत्र को है। इसी वस्तुस्थिति को ध्यान में रखते हुए आर्थिक सुधारों और निर्यात आयात नीति में कृषि, कृषि जन्म वस्तुओं, कृषि परक उद्योगों, खाद्य प्रसंस्कृत उद्यमों, खाद्य संसाधित लघु और मधयम उद्योगों को प्राथमिकता प्रदान की गई है। जहां तक विश्व व्यापार संगठन का सम्बन्ध है उसके सामने भारत में किसानों के हितों के बचाव, खाद्य और रोजगार सुरक्षा, कृषि समझौते के अंतर्गत बाजारों में पहुंच, आंतरिक समर्थन और निर्यात प्रतिस्पर्धा के संबन्ध में कुछ प्रस्ताव पेश किए हैं। जहां तक आंतरिक नीतियों का संबंध है इस वर्ष के बजट में, ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि क्लीनिकों, कृषि कारोबार केंद्रों और भण्डारण सुविधाओं के विस्तार पर जोर दिया गया है। खाद्य प्रसंस्करण उद्योगों को उत्पाद शुल्कों से पूरी तरह छूट देकर उन्हें विश्व बाज़ार में अधिकाधिक विदेशी मुद्रा कमाने लायक बनाया गया है।

अगर हमें कृषि में चार प्रतिशत की वृद्धि दर हासिल करनी है और निर्यात को 20 प्रतिशत से ऊपर बनाए रखना है तो समूचे परिदृश्य पर नजर डालते हुए हमें विभिन्न क्षेत्रों में विवेकपूर्ण लेकिन सुदृढ़ कदम उठाने होंगे। बिजली, पानी, उर्वरकों और कीटनाशकों दवाओं के लिए समुचित सब्सिडियां देनी होंगी। कृषि उत्पादों और उद्योगों के तैयार माल के मूल्यों के बीच तार्किक संतुलन रखना होगा, न्यूनतम समर्थन मूल्यों को व्यापक आधार प्रदान कर पैदावार का ग्राफ निरंतर बढ़ाते रहना होगा, देश के कुल पूंजी निवेश में कृषि को बारहवें स्थान से ऊपर ले जाना होगा, और कृषि लागत एवं मूल्य आयोग की इस शिकायत को दूर करना होगा कि पिछले 25 वर्षों में व्यापार की शर्तें हमेशा किसानों के प्रतिकूल रही हैं।

इस नसीहत के बाद कृषि उत्पादों के विश्व व्यापार में एक सधा हुआ खिलाड़ी बनने के लिए हमारे सामने यह सवाल रह

देश के कुल निर्यात के लगभग 35 प्रतिशत का श्रेय कृषि क्षेत्र को है। इसी वस्तुस्थिति को ध्यान में रखते हुए आर्थिक सुधारों और निर्यात आयात नीति में कृषि, कृषि जन्य वस्तुओं, कृषि परक उद्योगों, खाद्य प्रसंस्कृत उद्यमों, खाद्य संसाधित लघु और मध्यम उद्योगों को प्राथमिकता प्रदान की गई है।

रहकर उभरने लगता है कि कृषि उत्पादों और प्रसंस्कृत कृषि वस्तुओं के निर्यात के विभिन्न अवसरों का सार्थक लाभ क्यों न उठाया जाए। सभी पहलुओं से इस प्रश्न पर विचार के लिए नई निर्यात–आयात नीति के अंतर्गत मंत्रिमंडल ने मंत्रियों की एक समिति बनाई है। साथ ही बहुत जल्द समुचित कृषि नीति तैयार की जाएगी। कृषि राज्यों का विषय है। इस लिहाज से कृषि निर्यातों के लिए राज्यों का सहयोग एक अनिवार्यता बन गया है। निर्यात–आयात नीति के अंतर्गत कृषि निर्यात व्यापार में राज्यों को सहभागिता उसकी दूसरी विशेषता है। इस बात में लेश मात्र संदेह नहीं कि राज्यों का सहयोग मिलने पर केंद्र और राज्य, दोनों को लाभ होने के साथ भारत कृषि निर्यात के नक्शे में एक अलग रोबीली पहचान, ऊंचा स्थान और विशिष्ट नाम बना सकेगा। इसी बात को जेहन में रखते हुए नई नीति में खास–खास उत्पादों और खास

भौगोलिक स्थितियों के आधार पर निर्यात प्रयत्नों को तरतीब देने और सुचारु बनाने पर जोर देने को तीसरा महत्वपूर्ण कार्य समझा गया है। इस लिहाज से इस वर्ष का श्रीणेश हिमाचल प्रदेश और कश्मीर के सेबों के निर्यात से, महाराष्ट्र के कोंकण क्षेत्र के अलफांसो आमों से या फिर उत्तर प्रदेश के रसीले आमों के निर्यात से किया जा सकता है। ये मात्र दो–तीन उदाहरण हैं। राज्य सरकारें विशेष नकदी या व्यापारिक फसलों के लिए कुछ निश्चित क्षेत्रों की पहचान करके और उन्हें विकसित करके उन्हें निर्यात के प्रमुख केन्द्र बना सकती हैं। अपने विशेष उत्पादन और विशेष भौगोलिक स्थिति इन दो विशेषताओं के आधार पर ये इलाके ग्रामीण भारत से निर्यात की सुदृढ़ क्षेत्रीय धुरी बन सकते हैं। ये पास–पड़ोस या फिर दूर–दराज के क्षेत्रों के लिए भी उत्प्रेरक केंद्र और प्रेरणा–स्रोत बन कर निर्यात व्यवस्था को मजबूती और गतिशीलता प्रदान कर सकते हैं। इस काम में वाणिज्य मंत्रालय की भूमिका की अनदेखी नहीं की जा सकती। देश में ऐसे बहुत से क्षेत्र हैं जिन्हें अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में पूरी भागीदारी निभाने में कई बाधाओं का सामना करना पड़ता है। साथ ही उन्हें मूल्यों, मांग और गुणवत्ता मानकों की पूरी सूचना नहीं होती है। विभिन्न बाजारों और उत्पादों को सही और पूरी जानकारी न होने के कारण वे नहीं जानते कि कितना माल तैयार किया जाए, उसकी किस्म कैसी हो, न्यूनतम और अधिकतम मूल्य क्या रखा जाए और सबसे बढ़कर निर्यात में अन्य देशों के साथ स्पर्धा में आगे कैसे निकला जाए। वाणिज्य मंत्रालय को इस सबका ध्यान रखते हुए यह देखना होगा कि राज्यों की मार्फत भेजे गए संकेतों–संदेशों और जानकारियों का किस तरह पूरा उपयोग किया जा रहा है और किस तरह संबद्ध कृषि क्षेत्र निर्यात का कीर्तिस्तंभ बन सकते हैं। शुल्क छूट स्कीम और निर्यात संवर्धन पूंजीगत सामग्री स्कीम जैसी नीतिगत योजनाएं पहली अप्रैल से कृषि क्षेत्र पर लागू कर दी गई हैं।

यह बात निश्चित है कि कृषि को अंतर्राष्ट्रीय स्वरूप मिलने पर उसका प्रभाव कई मामलों पर पड़ेगा। व्यापार की शर्तों का रुझान अर्से से उद्योगों की तरफ रहा है, अब इसके कृषि की तरफ हो जाने की आशा की जा सकती है। कुछ अर्थशास्त्रियों का अनुमान है कि केवल एक प्रतिशत रुझान के कृषि क्षेत्र की तरफ मुड़ जाने से इस क्षेत्र पर लगभग 8,500 करोड़ रुपये अतिरिक्त व्यय होने लगेंगे। अगर यह प्रक्रिया कुछ वर्षों तक इस तरह चलती रही तो 60,000 करोड़ यानी छह खरब रुपये से अधिक राशि गैर कृषि क्षेत्र से कृषि क्षेत्र में स्थानांतरित हो जाएगी। इस विशाल पूंजी निवेश से गांवों में लोगों की क्रय शक्ति बढ़ने से वास्तविक मांग में उल्लेखनीय वृद्धि होगी और ग्रामीण जगत के मानचित्र में कई सुखद रंग भर जाएंगे। एक–एक गांव बहुआयामी गतिविधियों का केंद्र बन जाएगा। अगर किसान छोटे बड़े कृषि प्रसंस्कृत उद्योग, स्वयंसेवी संगठन, पंचायती राज संस्थाएं और स्वंय राज्य सरकारें इस ओर ध्यान दें तो अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में हमारा वर्चस्व बढ़ने लगेगा।

> ***2000–2001 में देश के निर्यात में 20 प्रतिशत डालर की वृद्धि हुई जो निर्धारित लक्ष्य से दो प्रतिशत अधिक है। यह उपलब्धि इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि दुनिया के बड़ी अर्थ–व्यवस्थाओं वाले दो देशों – अमरीका और जापान में मंदी का चक्र चलता रहा।***

अधिक निर्यात के लिए यह भी आवश्यक है कि खेत से बंदरगाह तक का नजरिया अपनाया जाए। नई निर्यात–आयात नीति में इस मुद्दे पर जोर देना उसकी चौथी विशेषता है। इस नीति की घोषणा से पहले इस वित्त वर्ष के बजट में खेत से बंदरगाह तक के सफर को सफल बनाने के लिए सड़कों, दूर–संचार साधनों और स्वयं बंदरगाहों जैसे बुनियादी ढांचे के विभिन्न क्षेत्रों के विस्तार की कई योजनाएं हाथ में ली गई हैं जो लघु उद्योगों के लिए बहुत महत्व रखती हैं। यहां यह उल्लेखनीय है कि लघु उद्योग कुल निर्यात में 35 प्रतिशत से अधिक का योगदान करते हैं। प्रस्तावित कृषि निर्यात नीति को सही अर्थों में और पूरी तरह खेत से बंदरगाह तक के नजरिए से जोड़ दिया जाए तो यह निर्यात बढ़ने की दिशा में सही कदम होगा। आरंभ में यह कदम भले ही कुछ छोटा लगे, लेकिन वक्त के साथ यह अधिक रंग लाएगा और ग्राम जगत के चेहरे पर चमक आ जाएगी। स्पर्धा में बाजी मारने के लिए ही इस वर्ष के केंद्रीय बजट में फलों और सब्जियों के प्रसंस्करण पर 16 प्रतिशत का उत्पाद शुल्क समाप्त होने से 16,000 करोड़ रुपये के खाद्य प्रसंस्करण उद्योग में एक बार फिर 20 प्रतिशत से अधिक वृद्धि दर हासिल होने के आसार बढ़ गए हैं। विश्व में फलों और सब्जियों के उत्पादन में भारत का दूसरा स्थान होने के बावजूद कुल उत्पादन का मात्र एक प्रतिशत से डेढ़ प्रतिशत ही प्रसंस्करण में प्रयुक्त होता है। लेकिन अब उत्पाद शुल्क समाप्त होने और नई निर्यात–आयात नीति में कृषि पर ध्यान केंद्रित करने से प्रसंस्करण उद्योग में निवेश गतिविधियां बढ़ने की आशा की जाने लगी है। तरह–तरह के प्रतिबंधों और कायदे कानूनों की जटिलताओं के कारण परिशोधित कृषि उद्योग में विदेशी पूंजी निवेश की मात्रा कम और गति मंद चल रही थी। खाद्य प्रसंस्करण उद्योग में अब तक केवल 2,000 करोड़ रुपये का ही विदेशी निवेश हो पाया है जबकि इस क्षेत्र में 40,000 करोड़ रुपये के पूंजी निवेश की आशा की जा रही थी। यह बात तय है कि अगर खाद्य प्रसंस्करण उद्योग को अधिक प्रोत्साहन दिया जाए तो देश के सकल घरेलू उत्पाद, जी.डी.पी. में इस क्षेत्र का योगदान 30 प्रतिशत से भी अधिक बढ़ सकता है। पिछले वर्ष फलों और सब्जियों के कुल उत्पादन के एक प्रतिशत से भी कम इस्तेमाल खाद्य परिशोधन उद्योग में किया गया लेकिन नई निर्यात–आयात नीति में कृषि निर्यात पर जोर देने, विभिन्न प्रदेशों में कृषि आर्थिक क्षेत्र बनाने के निर्णय और अन्य वस्तुओं की निर्यात वृद्धि के लिए लागू शुल्क रियायती योजनाओं, तथा निर्यात संवर्धन के लिए पूंजीगत सामान के रियायती आयात (ई.पी.सी.जी.) जैसी योजनाओं को कृषि क्षेत्र पर भी लागू करने से इस उद्योग के निर्यात व्यापार में एकदम उछाल

आ सकता है। इस वर्ष के बजट में आवश्यक उपभोक्ता वस्तु अधिनियम में संशोधन के अंतर्गत खाद्यान्नों के आवागमन पर प्रतिबंध की समाप्ति और स्टाक आदि की लाइसेंसिंग व्यवस्था को हटाने से भी खाद्य प्रसंस्करण उद्योग के विकास में सहायता मिलेगी।

इस वर्ष की नीति का एक अन्य बड़ा कदम बाजार प्रवेश पहल का है। उद्योग चाहे कृषि आधारित वस्तुओं से जुड़े हों या गैर कृषि आधारित वस्तुओं से, सभी को विभिन्न बाजारों में अपने कदम रखने और बढ़ाने के लिए कुछ जरूरी उपाय करने होते हैं। यही संदेश इस नई स्कीम में मुखर हुआ है। बाजार प्रवेश पहल की स्कीम के अंतर्गत सरकार, उद्योगों को कुछ चुनींदा देशों में अनुसंधान और विकास, बाजार की खोज, विशिष्ट बाजारों और उत्पादों के अध्ययन, गोदामों और खुदरा विपणन के बुनियादी ढांचे और प्रत्यक्ष हाट संवर्धन गतिविधियों में सहायता देगी। इसके लिए वह मीडिया विज्ञापनों तथा खरीदारों और बिक्रीकर्ताओं के सम्मेलनों के माध्यम से अपने उत्पादों का प्रचार–प्रसार करेगी। सूचना का व्यापक आधार तैयार करने और निर्यातकों एवं आयातकों को आवश्यक सूचना सुगमता से सुलभ कराने के लिए दिल्ली के प्रगति मैदान में कारोबार एवं व्यापार सुविधा केंद्र और व्यापार प्रवेश द्वार जल्द बनाने का निश्चय किया गया है। इसका मुख्य उद्देश्य एक ही स्थान पर भारतीय निर्यातकों और आयातकों को विश्व श्रेणी की व्यापार सूचना प्रदान करना है। इस काम के लिए विदेशों में भारतीय दूतावास प्रमुखों, निर्यात संवर्धन परिषदों और जिन्स बोर्डों को जोड़ा जाएगा तथा उनका सहयोग प्राप्त किया जाएगा।

पिछले वर्ष की निर्यात आयात नीति में निर्यात प्रोत्साहन के लिए चीन की तर्ज पर तमिलनाडु और गुजरात में विशेष आर्थिक क्षेत्रों की स्थापना के साथ–साथ निर्यात के बुनियादी ढांचे के विकास में राज्य सरकारों को पहली बार जोड़ा गया था। वर्तमान वित्त वर्ष के बजट में इस काम के लिए लगभग एक करोड़ रुपये का प्रावधान किया गया है। कृषि उत्पादों के निर्यात में राज्यों का सहयोग इसलिए भी जरूरी हो गया है कि मात्रा अथवा कोटा प्रतिबंधों से इस वर्ष मुक्त की गई नई 715 वस्तुओं में 147 कृषि उत्पाद हैं। शेष वस्तुओं में 342 चीजें विभिन्न कपड़े और कपड़ों से तैयार वस्तुओं की है तथा 226 वस्तुएं विनिर्माण यानी मैनुफैक्चरिंग की हैं। कुल 1,429 वस्तुओं में से इस वर्ष इन वस्तुओं का आयात मात्रा पर से प्रतिबंध हटा कर

व्यापार की शर्तों का रुझान अर्से से उद्योगों की तरफ रहा है, अब इसके कृषि की तरफ हो जाने की आशा की जा सकती है। कुछ अर्थ–शास्त्रियों का अनुमान है कि केवल एक प्रतिशत रुझान के कृषि क्षेत्र की तरफ मुड़ जाने से इस क्षेत्र पर लगभग 8,500 करोड़ रुपये अतिरिक्त व्यय होने लगेंगे।

भारत ने विश्व व्यापार संगठन के फैसले और अपनी वचनबद्धता का पालन कर दिखाया है। इस कदम को कुछ क्षेत्रों में यह कह कर कोसा गया है कि इससे देश में विदेशी ब्रांड वाली चीजों की आंधी चलने लगेगी। कुटीर घरेलू और अन्य छोटे उद्योगों को गैर–बराबरी की प्रतियोगिता का सामना करना पड़ेगा, बेरोजगारी बढ़ेगी, कृषि और किसान तबाह हो जाएंगे, कपड़ा और डेयरी उद्योग चौपट हो जाएंगे और देश को पुरानी कारों का कबाड़खाना बना दिया जाएगा। इस आशंका को निर्मूल बताते हुए कहा गया है कि अगर अन्य देशों ने हमारे यहां डंपिंग यानी सस्ता माल पाटने पर अपने निर्यात पर सब्सिडी देने का अनुचित काम किया तो प्रति संतुलनकारी शुल्क या अधिक आयात शुल्क लगा कर देसी माल की रक्षा की जाएगी। प्रतिबंध आयातित माल की मात्रा पर उठाया गया है, न कि अयात शुल्क पर। यहां इस बात को नज़रअंदाज करना वास्तविकता से मुंह मोड़ना और भ्रांतियों का प्रसार करना होगा कि मार्च 1999 तक 8066 वस्तुओं के आयात कोटों पर प्रतिबंध हटाने के बावजूद वैध रूप से आयातित सामग्री की न तो कोई बाढ़ आई और न कोई तूफान। जो कुछ विदेशी सामान देखने में आया वह नेपाल से चोरी छिपे लाया हुआ अधिकतर चीनी सामान था। लगता ही नहीं है कि आयात क्षेत्र में अफरातफरी वाला कोई परिवर्तन हुआ है। उल्टे यह सुखद बदलाव जरूर हुआ है कि मात्रा प्रतिबंध हटाने की प्रक्रिया आरंभ होने से पहले 1994–95 में जहां आयात की वृद्धि दर 22.9 प्रतिशत थी, वह 1996–97 में गिरकर 6.7 प्रतिशत और 1997–98 में उतर कर 6 प्रतिशत पर सिमट गई। 1998–99 में तो यह और भी गिर कर 2.2 प्रतिशत रह गई। इसी तरह जब हम पिछले वर्ष एक अप्रैल से 714 वस्तुओं पर से हटाए गए मात्रा प्रतिबंधों पर नजर डालते हैं तो भी हम पाते हैं कि इस सूची की 200 से कुछ अधिक चीज़ों का आयात हुआ ही नहीं। मात्र कांच के सामान, छातों, ड्राई सेलों और सेब सहित लगभग एक दर्जन वस्तुओं को ही कुछ अधिक मात्रा में मंगाया गया। 87 प्रतिशत वस्तुओं का आयात लगभग पहले जितना ही होता रहा। विदेशी माल से भारतीय बाज़ारों के पट जाने की बात इसलिए भी गले नहीं उतरती कि पिछले वर्ष यानी 2000 में 714 वस्तुओं पर कोटा प्रतिबंध हटाने के बाद आम उपभोक्ता वस्तुओं का आयात उल्टा लगभग 8 प्रतिशत कम हुआ है। विदेशी माल की भरमार का भ्रम तोड़ने में रुपये के डालर मूल्य में गिरावट ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। लेकिन अब गत पहली अप्रैल से जिन 715 वस्तुओं पर से मात्रा प्रतिबध हटाया गया है, उनमें से लगभग 300 वस्तुओं को सेन्सिटिव यानी संवेदनशील कह कर यह संदेश दिया गया है कि ढिलाई से काम लेना जोखिम को न्योता देना होगा। इनमें लघु उद्योगों में तैयार वस्तुएं, कृषि उत्पाद, कुक्कुट फार्मों के उत्पाद, पुरानी कारें और शराब जैसी अनेक चीजें शामिल हैं। उदाहरण के लिए हम मुर्गी पालन व्यवसाय के उत्पादों को लेते हैं। विश्व में अंडों के उत्पाद में भारत का चौथा और चूजों के उत्पादन में दसवां स्थान है। अमरीका और अधिकतर पश्चिमी देशों में चूजों के ऊपरी हिस्से जैसे छाती के मांस को ही खाया जाता है, टांगों को नहीं। अगर इन्हें कोड़ियों या

बहुत कम मूल्य पर भारत भेज दिया जाए तो भारतीय मुर्गी पालन उद्योग के सामने गंभीर चुनौती पैदा हो जाएगी। इसी तरह पश्चिमी देश अपने यहां के अनाजों और दूसरे कृषि उत्पादों पर भारी सब्सिडी देते हैं। इससे ये चीजें बहुत ही सस्ते दामों पर भारत को बेची जा सकती हैं। इससे हमारी कृषि व्यवस्था चौपट हो जाएगी। इसलिए इस वर्ष की निर्यात आयात नीति और इससे पहले आम बजट में यूरोपीय देशों की सब्सिडियों के जवाब में इन वस्तुओं के आयात पर भारी शुल्क लगा कर समाधान का मार्ग प्रशस्त कर दिया गया है। इस दिशा में कुछ कदम तो उठाए भी जा चुके हैं – धान और चावल, मकई, दुग्ध चूर्ण, चूजों की टांगें, कृषि, डेयरी और मुर्गीखानों के उत्पादों पर सीमा शुल्कों में भारी वृद्धि कर दी गई है। वजट में चाय, काफी और नारियल पर सीमा शुल्क की दर 35 प्रतिशत से बढ़ाकर 70 प्रतिशत कर दी गई है। गेहूं पर 50 प्रतिशत, चावल पर 70 प्रतिशत और मकई पर 50 प्रतिशत आयात शुल्क है। खाद्य तेल पर भी आयात शुल्क 35 प्रतिशत से बढ़कर 75 प्रतिशत कर दिया गया है। वाणिज्य मंत्री से पहले वित्त मंत्री यशवंत सिन्हा ने आयातित पुरानी कारों पर सीमा शुल्क बढ़ाकर 180 प्रतिशत से भी अधिक करने का आश्वासन दिया था। साथ ही उन्होंने विदेशी शराब पर भी ऐसा ही शुल्क लगाने का वचन दिया था। इतना ही नहीं निर्यात आयात नीति के अंतर्गत विश्व व्यापार संगठन के समझौतों में दिए गए संरक्षणात्मक उपाय जैसे डंपिंग विरोधी शुल्क और प्रति संतुलनकारी शुल्क, लगाने का साफ संदेश इस निर्यात आयात नीति में दे दिया गया है। रही बात 300 संवेदनशील वस्तुओं के आयात प्रवाह की, तो उस पर नज़र रखने के लिए स्थायी रूप से युद्ध कक्ष बनाया गया है जिसमें व्यापार के महानिदेशक और वाणिज्य, राजस्व तथा कुछ अन्य विभागों के सचिव होंगे। भारत विश्व का तीसरा सबसे बड़ा अनाज उत्पादक देश होने के नाते अपने अर्थतंत्र के मूलाधार खेती और किसानों के हितों को ताक पर रखकर विश्व बाजार से जुड़ने का जोखिम मोल नहीं ले सकता। यही कारण है कि कृषि उत्पादों का आयात, सरकारी संगठनों के जरिए किया जाएगा। देशी उद्योगों के साथ–साथ लोगों के स्वास्थ्य को बचाने के लिए भारी आयात शुल्क लगाने के अलावा गुणवत्ता–नियंत्रण, स्वास्थ्य और सुरक्षा नियमों के सख्ती से पालन की व्यवस्था इस वर्ष की नीति में की गई है। उपभोक्ता सामान के आयात पर कम से कम 35 प्रतिशत शुल्क लगा दिया गया है। जो कुछ स्थितियों में सौ प्रतिशत या उससे भी अधिक जा सकता है। इसलिए आयात के दरवाजे खुले होने के बावजूद विदेशी फलों–सब्जियों, शराब और कारों के शौकीनों को अपनी मनचाही चीजों और मौजमस्ती के लिए भारी कीमत चुकानी पड़ेगी। आयात के दरवाजे खोलने का मतलब यह नहीं कि अपने कुटीर, लघु तथा मध्यम स्तर उद्योगों को जारी सुविधाएं और प्रोत्साहन खत्म हो जाएंगे बल्कि उन्हें मजबूत बनाने की डोज देते रहने का क्रम निरंतर जारी रहेगा। इसके अलावा विश्व व्यापार संगठन के साथ हुए कृषि समझौते में अनुसंधान, कीट और रोग नियंत्रण, विपणन, संवर्धन सेवाओं और बुनियादी ढांचे को मजबूत बनाने वाली सेवाओं के लिए दी जा रही वर्तमान सब्सिडियों में कटौती की व्यवस्था नहीं है और न इसकी हम से अपेक्षा की गई है।

मात्रा प्रतिबंध हटाने का सबसे अधिक लाभ उपभोक्ताओं को मिलेगा। उन्हें मन पसंद की चीजें खरीदने के लिए एक बड़ा बाजार खुला मिलेगा। इससे घरेलू बाजार की लूट खत्म न हो, तो भी कम जरूर हो जाएगी। उपभोक्ता सामान की खरीद के मामले में बादशाह बन जाएगा। उसे यह फैसला करने की आज़ादी होगी कि वह थाईलैंड के सौ रुपये किलो वाले अमरूद खरीदे या 20 रुपये वाले बढ़िया देसी अमरूद, या फिर अमरीका और आस्ट्रेलिया सेब। वह क्यों खरीदेगा महंगी चीजें। उपभोक्ता अपने देश की फल सब्जियां खाकर क्यों न अपना बजट सुरक्षित रखें। इसलिए खाओ विदेशी, पहनो विदेशी और गाओ विदेशी की बजाए वह क्यों न वास्तविकता से रूबरू होकर सही सस्ता खाए, सही सस्ता पहने और सही सच्ची मस्ती में गाए।

268, सत्य निकेतन, मोती बाग,
नई दिल्ली–110021

शहर की ओर

राजकुमारी (राखी)

शहर की विषमताएं गांव में छाने लगीं।
वहां की प्रवृत्तियां यहां भी नजर आने लगीं।।

लोग होते थे बड़े ही
मृदुल, भावुक व सरल
देखकर जिनकी सहिष्णुता
पिघलता भुजंगो का गरल

फुंफकार जटिलताओं की यहां भी आने लगी
कठोरता की भाषा मृदुलता में समाने लगी
उफ! शहर की विषमताएं गांव में आने लगीं।

जिनकी आत्मीयता की प्रवृत्ति
भारतीय संस्कृति की पहचान थी
'गैर' से अनभिज्ञ अपनापन
ही जिनकी जान थी।

आज अपनों के ही मुख पर
गैरों सी शिकन आने लगी

आत्म संयमित नहीं, आत्म सीमित
जिन्दगी भाने लगी।
शहर की विषमताएं गांव में छाने लगीं

चिलचिलाती धूप में
दिन भर थे जो हल चलाते
पत्थरों को पानी और
धरती को परिपूर्णा बनाते

उन्हें ही मशीनों की गड़गड़ाहट भाने लगी
झिलमिलाते सितारों के आंगन का परित्याग कर
टोलियां देखो शहर की ओर जाने लगीं।
शहर की विषमताएं गांव में छाने लगीं।

द्वारा मोहन चन्द्र दास,
आनंद मार्ग स्कूल के बगल में,
हेसल पो. हेहल, राची–834005
झारखंड

गांव के बच्चे क्या खेलें, इसकी चिंता कौन करेगा

अनिल चमड़िया

अपने देश की नई खेल नीति क्या होगी इसका अंदाज ही लगाया जा सकता है। लेकिन एक बात बहुत साफ है कि पहले से चली आ रही खेल नीति से अपने देसी खेलों को कोई खास बढ़ावा नहीं मिलता दिखाई पड़ रहा है। यदि राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय प्रतियोगिता में बाजी मारने के खयाल से देसी खेलों को कोई प्रोत्साहन मिला भी है तो वह इस तरह की प्रतियोगिता के इर्द–गिर्द सिमट कर रह गया है। उससे अपने खेलों के पक्ष में कोई माहौल नहीं बन सका है। यदि इस संबंध में खेल नीति की कोई स्पष्ट दिशा होती तो एक बात जरूर दिखाई पड़ती। वह यह कि अपने यहां के सामाजिक ताने–बाने के अनुरूप नए–नए खेल ईजाद किए जाते। लेकिन देश में क्या कोई भी एक ऐसा नाम स्थापित हो पाया है जिसने अपने यहां के खेलों की दुनिया में कोई सृजन किया हो। किसी तरह की नीति का अभाव नीचे के स्तर पर जाकर किस तरह से प्रभावित होता है, इसका उदाहरण एक शिक्षिका की इस प्रतिक्रिया से लगाया जा सकता है। एक ग्रामीण इलाके के स्कूल में पास के शहर से पढ़ाने के लिए आने वाली उस शिक्षिका ने बताया कि वह बच्चों को कुश्ती नहीं खिलाती है। क्योंकि एक तो इससे चोट लगने का खतरा होता है और दूसरे कि इस खेल से बच्चों को कोई शिक्षा भी नहीं मिलती है। शिक्षा से उनका तात्पर्य इस तरह के खेलों से स्कूली पढ़ाई में कोई योगदान नहीं हो पाने से है। इस शिक्षिका की इस प्रतिक्रिया से एक बुनियादी सवाल खड़ा होता है कि खेलों के पीछे क्या दर्शन होता है। खेल के बारे में अपने देश के ग्रामीण इलाकों के शिक्षकों की क्या समझ है। वह खेल को क्या समझते हैं। मनोरंजन का जरिया, स्वास्थ्य विकास का एक माध्यम, स्कूली पाठ्यक्रम का एक हिस्सा या फिर सामाजिक अनुशासन को विकसित करने का जरिया। खेल व्यक्तित्व का निर्माण और उसमें सांस्कृतिक दृष्टि में पैनापन लाने की एक प्रक्रिया होती है।

खेल के बारे में किसी किस्म की बुनियादी समझ ही उसके स्वरूप और विषय का निर्धारण करने का आधार होती है। क्या कोई भी खेल एक ऐसे आंतरिक भावों और स्वभाव में अघोषित

सृजनात्मकता या विकृतियों के कण पैदा करता है जिसे ध्यान में रखकर उसके स्वरूप और विषय का गठन किया गया है? अपने यहां हमने बचपन में कई खेल खेले। इन्हें मुख्यतः तीन भागों में बांटा जा सकता है। एक तरह के वे खेल जिनमें हमें मुहल्ले टोले में रहने वाले भइया और चाचाओं के पास जाना पड़ता। कभी गुल्ली डंडा बनवाने के लिए पड़ोसी बढ़ई लल्ली चाचा, भुटोलिया चाचा के पास जाना पड़ता तो पतंग के लिए पड़ोस के बाड़ा मुहल्ले में उस मुस्लिम चाचा के यहां। मुहल्ले में मैदान के पास रहने वाली मुस्लिम महिला तारा दीदी के यहां गुड़िया बनवाने के लिए जाना पड़ता। लट्टू में गूंज लगवाने के लिए तपती भट्टी के पास झुलसते हीरा लोहार के पास भागना पड़ता।

दूसरे खेल उस तरह के होते जिनके लिए हमें केवल मुहल्ले टोले के दोस्तों या घर के दूसरे सदस्यों को इकट्ठा करना पड़ता। आईस–पाईस, छुआं–छुअंता जैसे खेल इस वर्ग के थे। पेड़ पर चढ़कर दोलहा पाती या लंगड़ी खेल लेते। खेलने के लिए पास के कई तरह के पेड़ भी होते। तीसरे खेल इस तरह के होते जिनके लिए दुकानदारों के यहां जाना पड़ता। वहां बनी बनाई छोटी गेंद, अंटा या गोली खरीद कर लानी पड़ती। या फिर बाजार में फेंक दिए गए सिगरेट के डिब्बे या टूटी चूड़ी बटोरकर अपने खेल संसार को रचते। ग्रामीण या अर्द्ध शहरी इलाकों में खेलों का यह संसार आज भी किसी न किसी रूप में मौजूद है। लेकिन इस तरह के तमाम खेल हमारे स्कूली खेल का कभी हिस्सा नहीं रहे हैं। अपने यहां आधुनिक शिक्षा मुहैया कराने का दावा करने वाली स्कूली शिक्षा पद्धति ने समाज में प्रचलित उन खेलों में ही अपना हिस्सा बनाया जिसमें अर्ध आधुनिकता का रूप दिखाई पड़ता था। या फिर उसे आधुनिकता में ढालने की संभावना नजर आती रही थी। इसीलिए हम यहां अपनी बातचीत को ग्रामीण इलाकों के स्कूली बच्चों के इर्द–गिर्द ही रखना श्रेयस्कर समझते हैं।

क्या देश के ग्रामीण इलाकों के खासतौर से स्कूली बच्चों के लिए सरकार की ओर से खेल संबंधी कोई दिशा–निर्देश जारी हुए हैं कि उन बच्चों को कौन–कौन से खेल खिलाए जाएं? मैंने स्वयं देश के विभिन्न हिस्सों के ग्रामीण स्कूलों में एक अध्ययन किया और वहां के शिक्षकों से पूछा कि वे अपने संस्थान के बच्चों को कौन से खेल खिलाते या सिखाते हैं। यह पाया गया कि स्कूलों में एक जैसे खेल नहीं खिलाए जाते हैं। यह स्कूल के शिक्षकों पर निर्भर करता है कि वे बच्चों को

मोटे तौर पर यह पाया जाता है कि हमारे खेलों में विविधता रही है। पूरा मुहल्ला या टोला एक साथ कई–कई खेल, खेल सकता है। इसके लिए मैदान भी हो सकता है और घर का कोई कोना भी।

कौन सा खेल खिला रहे हैं। ग्रामीण बच्चे यह तय करने की स्थिति में भी नहीं होते हैं कि उन्हें कौन सा खेल खेलना है। जाहिर है कि शिक्षक बच्चों को वहीं खेल खेलने की इजाजत देता है या अपनी देखरेख में खेलवाता है जो खेल उनकी पसंद का हो। उसके लिए आसान हो। शिक्षक की सामाजिक पृष्ठभूमि यहां महत्वपूर्ण हो जाती है।

अपने यहां खेल सामाजिक सृजन रहा है। समाज के बीच से ही खेल के रूप निर्धारित होते रहे हैं। लेकिन उन खेलों में एक बात बहुत स्पष्ट रही है कि उस खेल में पूरा का पूरा समाज और अपने आसपास की दुनिया शामिल रहती है। मोटे तौर पर यह पाया जाता है कि हमारे खेलों में विविधता रही है। पूरा मुहल्ला या टोला एक साथ कई खेल, खेल सकता है। इसके लिए मैदान भी हो सकता है और घर का कोई कोना भी। हम अपने खेल के साथ आस–पास की दुनिया से जुड़ने को भी मजबूर रहे हैं। उसके अनुभवों से अपने को समृद्ध करते रहे हैं। खेलों में बाजार का प्रवेश बहुत बाद में हुआ है।

आज खेलों को लेकर पूरा का पूरा ग्रामीण परिदृश्य कैसा है। देश के किसी भी हिस्से में चले जाइए। पहले से जो खेल के मैदान रहे हैं वे मैदान बड़ी–बड़ी कंपनियों के खेल के मैदान के रूप में तब्दील हो चुके हैं। कंपनियों के खेल से तात्पर्य उन खेलों से है जिनके लिए बड़ी–बड़ी कंपनियां सामान तैयार करती हैं। इन सामानों का आयात–निर्यात भी होता है। फुटबाल के बाद क्रिकेट की पिच से गांव के मैदान घिर चुके हैं। यानी एक तरह से देखा जाए तो मैदान महंगे खेलों की ओर लगातार बढ़ रहे हैं। पहले एक फुटबाल या एक बालीबाल खरीदना पड़ता था लेकिन अब हाकी और क्रिकेट के लिए बहुत सा सामान खरीदना पड़ता है। महंगे खेल हमारा ग्रामीण समाज नहीं खेल सकता तो भी वह उस महंगे खेलों की नकल करने में जुटा हुआ है। गांवों में यह दृश्य आम है जब बच्चे फंटी बांस का विकेट बना लेते हैं और किसी लकड़ी के चौड़े टुकड़े को बल्ला। गेंद भी तरह–तरह से बनाई जाती है। पूरा का पूरा हमारा ग्रामीण हल्का क्रिकेट का मैदान बनने में जुटा हुआ है। इसके पास बनने के लिए पहले सचिन, सौरभ, कपिल नहीं थे। ना ही हाउज डेट की भाषा। सब अपने खेलों को ही आदर्श मानते थे। किसी कंपनी के मोहताज तो कतई नहीं थे।

देखा जाए तो समाज की इस सृजनात्मकता को औद्योगिक विकास की गति ने हड़प लिया। यह शोध किया जा सकता है कि वह कौन सा काल था जब समाज की इस सृजनात्मकता को औद्योगिक विकास के नेताओं ने छल लिया। समाज ने यह सोच लिया कि ये नए पथ–प्रदर्शक हमें और भी बेहतर तथा आकर्षक खेल देंगे। हालांकि इसमें दो राय नहीं है कि इस वर्ग ने खेल की दुनिया को कम रंगीन बनाया है। बहुत सारे खेल ईजाद किए हैं। लेकिन वे सारे के सारे खेल बाजार में बिकने वाले खेल हैं। यानी उनके खेलों का विकास समाज के बहुत बड़े हिस्से को खेलों से वंचित करने के रूप में सामने आया है। यह उस हिस्से में भयानक किस्म की कुंठा पैदा करता है।

जाहिर है कि कंपनियों के लिए खेल उनकी खुद की समृद्धि के उद्देश्य से जुड़े होते हैं। इसीलिए उनकी प्राथमिकता में आर्थिक फायदे के अलावा कुछ नहीं होता। इसीलिए यह देखकर ज्यादा हैरानी नहीं होती है कि खेलों का विकास पूरी तरह से शहरोन्मुखी है।

लेकिन अब तो बाजारवाद ने एक और दूसरी स्थिति पैदा कर दी है। शहरी लोग कंपनियों के बनाए खेल खेलें लेकिन समूह में नहीं अकेले-अकेले। इंटरनेट के खेलों को इसके उदाहरण के रूप में लिया जा सकता है। अकेले खेलने वाले खेलों के ईजाद करने का सीधा-सीधा यही गणित है कि खेलों के ज्यादा से ज्यादा ग्राहक तैयार हो जाएं और यह काम खेलों में पहले सामाजिकता और अब सामूहिकता की भावना और जरूरत को खत्म किए बिना संभव नहीं हो सकता था।

गांव गरीब हैं और वे न तो वे खेल खरीद सकते हैं और न ही उन खेलों के बीच से बनने वाली सामाजिकता को झेलने की स्थिति में हैं। खेल से जब सामाजिक सृजन होता है तो वह पूरे समाज की चिंताओं के साथ खिलाड़ी को समृद्ध करता है। कंपनी का खेल अपने खिलाड़ी को महज आर्थिक दृष्टि से संपन्न करता है और अपना मोहताज बनाकर रखता है। या फिर उसमें विचित्र तरह की अर्थ की तेज भूख पैदा करता है। हमारे यहां या दुनिया भर में खेलों के बीच यदि कई तरह के अनैतिक या असामाजिक विस्फोट सामने आ रहे हैं, वे इन खेलों के मूल चरित्र से ही जुड़े हुए हैं। ठीक उसी तरह जैसे इन खेलों के नियाकोंम की दुनिया में असामाजिकता से भरी घटनाएं देखने सुनने को मिलती हैं और उनके अनुभवों से सबको गुजरना पड़ता है। यह भी सोचा जाना चाहिए कि आखिर क्या वजह है कि खेलों की दुनिया का विकास पुरुषवादी रहा है।

अब तक अपने देश में खेलों की दुनिया को समृद्ध करने वाला कोई सम्मान क्यों नहीं प्राप्त कर सका। इंटरनेट गेम्स बनाने वाले लोगों और कंपनियों के नाम हम जानते हैं। अभी हम यह कह सकते हैं कि देश के विभिन्न हिस्सों में कई गैर सरकारी संगठन नए-नए खेल बनाने में लगे हुए हैं। कइयों नें गरीब बच्चों के लिए वैसे खेल बनाए हैं जिन्हें बेकार की भौतिक वस्तुओं के माध्यम से खेला जाता है। कई ऐसी संस्थाएं भी हैं जो कि मिट्टी और प्राकृतिक उत्पादनों के माध्यम से खेलों को समृद्ध करने की कोशिश में लगी हुई हैं। मध्य प्रदेश में ऐसे प्रयास देखें गए हैं। लेकिन यह एक संसाधनों से लैस संस्थान को दी गई जिम्मेदारी का परिणाम है। हमारा कहना है कि समाज की एक स्वाभाविक जिम्मेदारी तो खत्म हो गई। समाज के विकास के साथ रचे-बचे खेल के विकास के स्वभाव को तो निगल ही लिया गया न? फिर इस दौर में गरीब बच्चों के लिए उस तरह के खेलों के विकास का मतलब ही क्या है जिससे

> ***गांव गरीब हैं और वे न तो खेल खरीद सकते हैं और न ही उन खेलों के बीच से बनने वाली सामाजिकता को झेलने की स्थिति में हैं। खेल जब सामाजिक सृजन होता है तो वह पूरे समाज की चिंताओं के साथ खिलाड़ी को समृद्ध करता है।***

हमारी पूरी व्यवस्था में ही कोई जगह नहीं है। ये बच्चे इसीलिए ये खेल खेलें कि वे गरीब हैं। खेल की दुनिया सहानुभूति की मोहताज हो जाए तो कैसे खेल का विकास हो सकता है। दूरदर्शन पर क्रिकेट ही क्रिकेट वे देखें, रेडियो पर क्रिकेट कमेंटरी ही सुनें और खुद मिट्टी और हरी पत्तियों से कोई जानवर बनाकर खेलें तो यह उनके अंदर कुंठा के अलावा और कुछ नहीं पैदा करता नजर आता है?

यही नहीं खेलों को हमने गरीब बच्चों को शिक्षित करने का माध्यम भी बनाया है। खासतौर से गैर सरकारी संगठन इस तरह वे खूब काम कर रहे हैं। यह सुनने में भी बड़ा आकर्षक लगता है कि बच्चे खेल के साथ शिक्षा भी ग्रहण कर रहे हैं। खासतौर से उन्हें गिनती और अंग्रेजी सिखाने के काम में इन खेलों का इस्तेमाल किया जाता है। लेकिन यह तो बच्चों को खास तरह की पढ़ाई पढ़ाने के लिए खेल का इस्तेमाल करने वाली बात हुई। यानी खेल को भी पढ़ाने का एक जरिया बनाया गया। लेकिन जो बच्चे क्रिकेट खेलते हैं, वहां तो बच्चों को इस तरह पढ़ाने और शिक्षित करने का उद्देश्य तो नहीं छिपा रहता है। वहां बच्चों को एक खास तरह के भाव से समृद्ध किया जाता है। ठीक इसी तरह शहरी और सपन्न बच्चों के लिए जो गीत बनाए जाते हैं, उनमें गिनती की पढ़ाई नहीं होती है लेकिन गरीब बच्चों के लिए गिनती सीखने वाले गीत ही जरूरी समझे जाते हैं। पढ़ाई के लिए खेल खिलाना या सिखाना और सामाजिक भावों को जगाने वाले मनोरंजक खेल में तो अंतर होता है। आखिर ग्रामीण स्तर पर हमने बच्चों के स्वस्थ मनोरंजन और सामाजिक तौर पर शिक्षाप्रद खेलों की जिम्मेदारी किस पर डाल रखी है। ग्रामीण विकास के लिए हमारे देश में बहुत बड़ा बजट होता है। लेकिन उस बजट में ग्रामीण खेलों का विकास कहां दिखाई पड़ता है? यहां ग्रामीण खेलों के बजाय यह कहें कि अपने खेलों के विकास का कोई मद दिखाई नहीं पड़ता है। स्वास्थ्य और शिक्षा के लिए बजट हैं लेकिन जैसा कि पहले कहा गया है कि खेल किसी दूसरे मद का हिस्सा नहीं है। खेलों की जरूरत की भरपाई से किसी भी मद का हिस्सा बनाकर पूरा नहीं किया जा सकता है। खेल मंत्रालय भी गांवों में खेलों के विकास की दिशा में कुछ विशेष करता है, इसकी जानकारी भी शायद ही किसी ग्रामीण को है।

देश में कई सांस्कृतिक संगठन भी सक्रिय रहे हैं। सृजन के नाम पर कई तरह के सांस्कृतिक क्रियाकलाप होते रहते हैं। नाटक लिखे जाते हैं। कहानियां और कविताएं रची जाती हैं। यानी सांस्कृतिक क्रियाकलाप के जो भी उपादान हो सकते हैं, उनमें से कई स्तरों पर सक्रियता तो दिखाई पड़ती है। लेकिन गांव के बच्चों, जो कि देश की आबादी का बहुत बड़ा हिस्सा है, के खेलों के सृजन के प्रति कोई दिलचस्पी दिखाई नहीं पड़ती है। ये बच्चे फटे टायर को नचाते, मोटर वाहनों की बैरिंग को लंबे से तार में फसा कर घुमाते, कागज का कार्क और गत्ते को बैडमिंटन का रैकेट बनाकर टी.वी. के दृश्यों की नकल करते हुए दिखाई पड़ जाते हैं। नकल करने का खेल हमारे बच्चे कितना सीख चुके हैं, क्या यह हमारे लिए लज्जाजनक नहीं है?

सी-251ए सेक्टर-19,
रोहिणी, दिल्ली-110085

ग्रामीण रोजगार का साधन : गौ पालन व्यवसाय

एम. भारती

हमारे देश में कृषि की प्रधानता सदियों पुरानी है। भारतीय संस्कृति के अनुरूप अत्यंत प्राचीन काल से पशु सदैव कृषि कार्यों में सहायक रहे हैं। सौभाग्यवश पशुधन हमारे देश में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध रहा है और यही स्थिति आज भी है। मुख्यतः गाय हमारी कृषि और ग्रामीण अर्थव्यवस्था में अत्यंत महत्वपूर्ण रही है। अधिक दूध देने वाली उन्नत नस्ल की गाय से डेयरी का व्यवसाय बहुत आसानी से शुरू किया जा सकता है। हमारे देश में चल रही गुजरात की अमूल डेयरी दुनिया भर में प्रसिद्ध है। सहकारिता के आधार पर हुए इस सफल प्रयोग ने ही भारत में श्वेत क्रांति को जन्म दिया था। गुजरात से प्रेरणा लेकर उत्तर प्रदेश आदि अनेक राज्यों में दुग्ध सहकारी समितियों का विकास बहुत तेजी के साथ हुआ। उत्तर प्रदेश की महिला डेयरी परियोजना तो आर्थिक सशक्तिकरण की दिशा में एक प्रकाश–स्तम्भ का कार्य कर रही है।

ग्रामीण परिवहन की रीढ़ कही जाने वाली बैलगाड़ी की महत्ता आज के जैट युग में भी कम नहीं है। साथ ही आज ट्रेक्टर के युग में भी बैलों से हल जोतते हुए किसान देखे जा सकते हैं। शहरों में भले ही गैस के चूल्हे जलाए जाते हैं लेकिन देहाती आज भी गोबर से बने उपले (कंडे) ही ईंधन के रूप में काम में लाते हैं। अंधाधुंध कटते हुए जंगलों को बचाने की दिशा में सूखे हुए गोबर को उम्मीद की किरण कहा जाता है क्योंकि गोबर के अभाव में विपुल मात्रा में जलाऊ लकड़ी की आवश्यकता होगी। प्राचीन परम्पराओं के वैज्ञानिक पक्ष की अनदेखी नहीं की जानी चाहिए। ग्रामीण क्षेत्रों के लिए उपयुक्त प्रचलित प्रौद्योगिकियों के सहारे यदि लाभ उठाया जाए तो देश के आर्थिक विकास में गौपालन–व्यवसाय सक्षम सिद्ध हो सकता है। गौमूत्र में कीटाणुनाशक कार्बोलिक एसिड होता है। गोबर तथा गौमूत्र के उपयोग पर नए सिरे से हमें ध्यान देना होगा। अष्टैश्वर्यमयी लक्ष्मी बसते गोमये सदा अर्थात गाय के गोबर में धन की देवी लक्ष्मी निवास करती हैं। यह बात महाभारत में कही गई है। जहां भी गाय जैसे दुधारू पशु होंगे वहीं उनका

गोबर भी होगा। जहां उनका गोबर होगा वहां सम्पन्नता और समृद्धि होगी। यह बात अब नए संदर्भों में वैज्ञानिक कारणों से भी सच साबित हो रही है।

गाय के गोबर से बिजली

गाय के गोबर में अद्भुत क्षमता तथा उसके रासायनिक गुणों को देखते हुए सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक डा. होमी जहांगीर भाभा ने कहा था हम यूरेनियम के स्थान पर गोबर से भी परमाणु बम बना सकते हैं। इसी से प्रेरित होकर एक भारतीय छात्र ने गाय के गोबर से घड़ी, वाकमैन, ट्रांजिस्टर चलाने तथा छोटे बल्ब जलाने की तकनीक विकसित की है। नवदीप पब्लिक स्कूल – भूता (बरेली) उत्तर प्रदेश में कक्षा सात के छात्र आशुतोष यादव तथा उनके साथियों ने अपने इस माडल का सफल प्रदर्शन भी किया था। उसके बाद 3–7 जनवरी 2001 को उन्होंने नई दिल्ली में सम्पन्न राष्ट्रीय विज्ञान कांग्रेस में भाग लेकर वैज्ञानिकों के समक्ष अपनी इस नन्ही किंतु महत्वपूर्ण खोज का प्रदर्शन किया। ऊर्जा संकट का हल तलाशने में जुटे वैज्ञानिकों के साथ कदम मिलाने वाले इस छात्र को बहुत सराहना मिली है। गोबर से बिजली बनाने की सम्भावनाएं उत्साह का संचार करती हैं। आवश्यकता उपयुक्त प्रौद्योगिकी अपनाने की है। भविष्य के लिए देशज ज्ञान–विज्ञान पर विशेष बल दिया जा रहा है। गौमूत्र को गोबर में मिलाकर उस घोल से एक वोल्ट 0.5 एंपीयर का ऊर्जा प्राप्त करने के लिए इस अन्वेषी छात्र ने एक तांबे की तथा दूसरी सीसे की प्लेट में तार बांधकर गोबर के घोल युक्त दो डिब्बे में डाले और तार को घड़ी से जोड़ा तो आधे घण्टे बाद वह चल पड़ी और आज तक बिना बैटरी सैल के चल रही है।

गाय के गोबर के उपयोग

ग्रामीण क्षेत्रों में रोशनी तथा रसोई गैस उपलब्ध कराने में गोबर गैस संयंत्रों की सफलता तो सर्वविदित है। पांच दशक पूर्व जब गोबर गैस बनाने का यह अभिनव प्रयोग शुरू हुआ था तो सबसे पहले गोबर गैस संयंत्र को भी ग्राम लक्ष्मी की संज्ञा दी गई थी। गाय के गोबर से घर आंगन को लीपने की परम्परा भारत में बहुत पुरानी है। हमारे पूर्वज अत्यन्त प्राचीन काल से यह बात जानते थे कि गाय के गोबर से स्वर्ण क्षार तथा गाय के दूध में स्वर्ण तत्व होता है। ठीक उसी प्रकार जैसे कि मानव रक्त में लौह तत्व अर्थात आयरन पाया जाता है। वैज्ञानिक अब जाकर यह जान पाए हैं कि गाय का गोबर आक्साइडयुक्त होने से वह विभिन्न रोगाणुओं तथा विषाणुओं को नष्ट करने की क्षमता रखता है। आयुर्वेद के प्रसिद्ध ग्रन्थ *भैषज्य रत्नावली* में नेत्र रोगों के लिए परीक्षित एक योग का वर्णन किया गया है। इसमें गाय के गोबर से प्राप्त रस से गोमय अंजन बनाया जाता है जो विभिन्न नेत्र रोगों में अत्यन्त लाभकारी है। इसके अतिरिक्त पंचगव्य तैल, गोमूत्र, हर्र का चूर्ण, गौमूत्रासब, गौमूत्र अर्क, बटी, पंचगव्य, बाल रस, नारी–संजीवनी, प्रमेहारि, गोतकासव, श्विगंनाशक, अगंराग, इल्लीनाशक आदि बनाने का उल्लेख हमारे प्राचीन ग्रन्थों में किया गया है।

गौ पालन के परम्परागत व्यवसाय को लाभकारी बनाने की दृष्टि से विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के इस युग में आज बहुत–सी सम्भावनाएं हैं। यदि ध्यान दिया जाए तो गौपालन से बहुत–सी ग्रामीण समस्याओं का समाधान किया जा सकता है। गाय के दूध, दही, मक्खन, घी, गोबर, मूत्र, अहिंसक चर्म, अस्थि तथा सींगों आदि से बने विभिन्न उत्पादों से लघु कुटीर श्रेणी के ग्रामोद्योग चलाए जा सकते हैं। ग्रामीण युवा तथा महिलाएं आर्थिक रूप से आत्म निर्भर हो सकती हैं। अनेक गैर सरकारी संगठनों ने गाय के गोबर और मूत्र से बने उपयोगी पदार्थ बनाए हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में यह कार्य लघु एवं कुटीर उद्योगों के रूप में शुरू किया जा सकता है। गऊ पालन अतिरिक्त रोजगार का साधन बनेगा। साथ–साथ ही साथ इससे अतिरिक्त आमदनी भी बढ़ेगी। गौशालाओं में अब विभिन्न दवाएं भी गोमूत्र से बनाई जा रही हैं। गाय के प्रति पवित्र आस्था में बहुत से रहस्य छिपे हैं। इन्हें वैज्ञानिकों की कसौटी पर कस कर भी देख लिया गया है। अब अविलम्ब इस पर ध्यान देने की तथा पहल करने की आवश्यकता है।

गोमूत्र तथा गोबर पर आधारित कुटीर उद्योग

गो मूत्र तथा गोमय (गोबर) आधारित कुटीर उद्योगों की श्रृंखला बहुत लम्बी है। कामधेनु सूखी खाद, तरल कीटनाशक, गोमय साबुन, गोमय मरहम, शैम्पू, तेल, धूप तथा अगरबत्तियों का उत्पादन भी किया जा सकता है। इस बारे में तकनीकी जानकारी प्राप्त करने के लिए युग निर्माण योजना ट्रस्ट, मथुरा (उत्तर प्रदेश) से सम्पर्क किया जा सकता है। इस ट्रस्ट ने अपने मुख पत्र के मई, जून, जुलाई तथा सितम्बर 2000 के अंकों में विभिन्न गौ उत्पाद बनाने की विधियां सविस्तार प्रकाशित की हैं। आयुर्वेद पद्धति के अनुसार औषधि सेवन के लिए उस बछिया का गौ–मूत्र उत्तम माना जाता है जो कि अपनी मां के दूध का ही सेवन करती हो तथा चारा न खाती हो। गोबर की खाद रासायनिक उर्वरकों की तुलना में कहीं उत्तम, पर्यावरण हितैषी तथा सस्ती और सुलभ है। वैज्ञानिकों का मानना है कि गाय के गोबर में मौजूद जीवाणु विषाक्तता के प्रभाव को कम करते हैं। गाय के मात्र एक ग्राम गोबर में एक हजार करोड़ तक ऐसे जीवाणु पाए जाते हैं जो अपने साथ–साथ दूसरे कचरे को भी उपयोगी खाद में बदल देते हैं। ऐसे अनेक चमत्कारों के कारण गाय को कामधेनु की संज्ञा दी जाती है। बढ़ती गंदगी तथा मच्छर मक्खी की समस्या से निपटने के लिए गोमूत्र तथा गाय के गोबर का प्रयोग सफल सिद्ध हुआ है। संसार भर के सभी जीवों में एक गाय का मल मूत्र ही ऐसा है जो कि मल मूत्र होते हुए भी एक शोधक तथा औषधि का कार्य करता है। इसी लिए गाय को शुभर्दशनी तथा प्रियदर्शनी कहा जाता है। गाय जीवन–पर्यंत उत्पादक बनी रहती है। अतः गौ पालन का मानव–जीवन में बहुत अधिक महत्व है।

केवल भारत ही नहीं युगांडा आदि कई देशों में गाय को पूज्य माना जाता है। भारत में भले ही इसकी वजह धार्मिक हो किंतु अन्य देशों में आर्थिक कारणों से गाय को महत्वूपर्ण माना जाता है। अतः गांववासियों को गऊ पालन की सार्थकता सिद्ध करनी होगी। ❑

77, गांधी नगर, बरेली, उ.प्र.

बढ़ता शोर प्रदूषण मानव–जीवन के लिए अशुभ संकेत

संजय कुमार रोकड़े

सारा विश्व पर्यावरण प्रदूषण की समस्या से जूझ रहा है। जल प्रदूषण, वायु प्रदूषण और रसायनों से बढ़ता प्रदूषण। पर्यावरण प्रदूषित होने से संपूर्ण मानव–जीवन संकट में पड़ गया है। हम यह भली–भांति जानते हैं कि वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण, रसायन प्रदूषण होता है पर यह बहुत कम जानते हैं कि शोर प्रदूषण भी मानव–जीवन को दूभर बनाता जा रहा है। शोर प्रदूषण रसायनों से होने वाले प्रदूषण से भी ज्यादा खतरनाक और मानव अस्तित्व के लिए बड़ा घातक है। यह और बात है कि इस प्रदूषण के दुष्परिणाम अन्य प्रदूषणों की भांति तत्काल सामने नहीं आते हैं।

शोर की परिभाषा को स्पष्ट करना एक मुश्किल और पेचीदा काम है। वैज्ञानिकों ने शोर को मापने के लिए एक इकाई बनाई है जिसे डेसीबल नाम दिया गया है।

डेसीबल का माप शून्य से शुरू होता है, जहां से ध्वनि सुनाई देना प्रारम्भ होती है। वैज्ञानिकों का मत है कि 45 डेसीबल तक का शोर सहनीय और हानिरहित होता है। शोर प्रदूषण अब शहरों में ही नहीं बल्कि गावों में भी फैलने लगा है। सामान्य से कहीं अधिक डेसीबल की ध्वनियां हमें लगातार सुनाई देती हैं। सामान्य से अधिक डेसीबल को शोर की श्रेणी में लिया जाता है। यह शोर हमारे स्नायुतंत्र के साथ–साथ सेहत पर भी बुरा असर छोड़ता है। शोर से कानों की संवेदनशीलता पर विपरीत प्रभाव पड़ना आश्चर्यजनक नहीं कहा जा सकता है। औद्योगिक बीमारियों में बहरापन सर्वाधिक पाया जाता है। लगातार शोर के संपर्क में रहने से कान के भीतरी हिस्से की तंत्रिकाएं क्रमशः धीरे–धीरे संवेदनहीन होने लगती हैं और अंततः पूर्णतः संवेदनहीन हो जाती हैं। उम्र बढ़ने के साथ–साथ व्यक्ति को ऊंचा सुनाई देना एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। किन्तु विभिन्न सर्वेक्षणों का निष्कर्ष है कि यह बहरापन महानगरों और शहरों के शोर–शराबे के बीच जीने वालों में जहां 45 वर्ष की आयु से ही प्रारम्भ हो जाता है वहीं गांव के शांत माहौल में रहने वाले लोगों को ऊंचा सुनाई देने की शिकायत अमूमन 60 वर्ष की अवस्था के बाद शुरू होती है।

काम करने के स्थानों पर शोर की समस्या और भी भयावह है। पश्चिमी जर्मनी में किए गए एक अध्ययन से यह स्पष्ट हुआ है कि शोरगुल भरे स्थानों पर काम करने वाले कर्मचारियों में कार्डियोवस्कुलर (दिल की) बीमारियां अधिक मात्रा में होती है। औद्योगिक सर्वेक्षण से यह भी ज्ञात हुआ कि कर्मचारियों को स्नायु संबंधी ही नहीं, सिरदर्द, मतली और इसी तरह की अन्य कई बीमारियां हो जाती है।

सारी दुनिया के वैज्ञानिकों ने शोर के घातक प्रभाव की खोज की और पाया कि निद्रा में लीन व्यक्ति 33 डेसीबल से अधिक ध्वनि होने पर जाग उठता है। 50 डेसीबल के शोर से निद्रा टल जाती है। 70 डेसीबल के शोर से टेलीफोन वार्ता प्रभावित होती है। 90 डेसीबल के शोर से एकाग्रता और कार्य–कुशलता कम होती है। डोनाल्ड के अनुसार 90 डेसीबल का शोर दृष्टिभ्रम पैदा करता है। लेहमान के अनुसार 93 डेसीबल का शोर छात्रों की एकाग्रता, पाठ स्मरण तथा गणित का प्रश्न हल करने में बाधक होता है। 120 डेसीबल का शोर कानों तक पहुंचते ही बैचेनी होने लगती है। वैज्ञानिक परीक्षणों के आधार पर पता चलता है कि 120 डेसीबल से अधिक ध्वनि गर्भ में पल रहे शिशु को भी प्रभावित करती है। गर्भस्थ शिशु के दिल की धड़कन शोर के कारण असामान्य तेजी से बढ़ जाती है। फलस्वरूप नवजात शिशु में बहरेपन की शिकायत उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है। यह बाद में अनेक रोगों का कारण भी बनती है।

केलिफार्निया के विश्वविद्यालय के प्रोफेसर डाक्टर नोवेल जोंस ने सवा दो लाख से भी अधिक नवजात शिशुओं का परीक्षण करने के बाद यह निष्कर्ष निकाला कि शांत स्थानों में रहने वाली महिलाओं के शिशुओं की तुलना में शोरगुल के लगातार सम्पर्क में रहने वाली महिलाओं के शिशुओं में जन्मजात विकृतियां अधिक होती हैं। उनके जन्मजात बहरे होने की भी काफी संभावना रहती है। 120 डेसीबल या उससे अधिक शोर में अक्षिदोलन (निस्टैग्मस) हो जाता है तथा चक्कर आने लगते हैं। इससे अधिकांश लोगों के सिर और बदन में दर्द तथा जोड़ों में ऐंठन होने लगती है क्योंकि उनके शरीर में हार्मोनों का, मांसपेशियों में लैक्टिक अम्ल का जमाव होने लगता है। मस्तिष्क अस्थिर हो जाता है। शोर के लगातार प्रभाव में रहने से व्यक्ति अनमना, उत्साहहीन और चिड़चिड़ा हो जाता है। शोर व्यक्ति की एकाग्रता को तो खत्म करता ही है, साथ ही कार्य–क्षमता को भी प्रभावित करता है।

जर्मनी के एक वैज्ञानिक डा. जेनसेन ने शोर और उसके मानव शरीर पर प्रभाव "विषय पर लम्बे समय तक अनुसंधान कार्य किया। उनके निष्कर्षों के अनुसार तेज शोर से व्यक्ति की शरीर की शिराएं संकुचित हो जाती हैं, नतीजतन छोटी शिराओं में रक्त का बहाव काफी कम हो जाता है। यह शरीर पर बहुत घातक प्रभाव छोड़ता है। शरीर में अचानक एड्रीनलीन हार्मोन की मात्रा में असामान्य वृद्धि

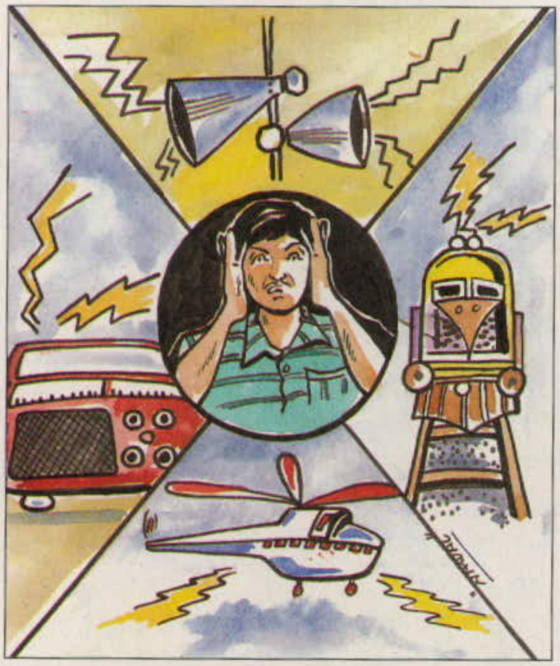

हो जाती है, जो रक्तचाप को तो बढ़ाती ही है साथ ही चिंता और घबराहट को भी जन्म देती है। शोर का पाचन क्रिया व केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र पर भी प्रभाव पाया जाता है। आस्ट्रेलिया के डा. ग्रिफिथ के अनुसार शोर आदमी को समय से पहले बूढ़ा बना देता है। रूपर्ट टेलर के अनुसार आज ऐसा कोई उद्योग नहीं है जिसके कर्मियों को श्रवण दोष न हो। बराबर शोर के बीच घिरे रहने से भोजन से पौष्टिक तत्व ग्रहण करने की हमारी क्षमता कम हो सकती है।

शोर पर अनुसंधान कर रहे कैलिफार्निया विश्वविद्यालय के चांसलर डा. वनेनुडसन का अपने 40 वर्षों के अनुभव के आधार पर कहना है कि धुंध की तरह शोर भी धीमी गति वाला मृत्युदूत है। जब लास एंजेल्स में मनोवैज्ञानिकों ने हवाई अड्डे के आस-पास रहने वाले स्कूली बच्चों का सर्वेक्षण किया तो पता चला कि उन बच्चों की स्मरण- शक्ति आते-जाते विमानों के कर्णभेदी शोर के कारण मंद पड़ गई है।

मनोवैज्ञानिकों के अनुसार शोर एक सीमा के बाद मनुष्य की विवेक-शक्ति पर आघात करके सहनशक्ति को कम कर देता है और उसे बेहद चिड़चिड़ा, असामाजिक और क्रोधित बना देता है। शोर से न केवल मनुष्य की कार्य क्षमता और स्वास्थ्य पर प्रतिकूल असर पड़ता है, बल्कि इससे पेड़-पौधों, इमारतों, चट्टानों को भी काफी नुकसान पहुंचता है और पहुंच रहा है। शोर विरोधी अन्तर्राष्ट्रीय संस्था के प्रधान गुन्थेर लेहमान ने कहा है कि शोर प्रौद्योगिकी की प्रगति का नहीं अपितु उसकी प्रतिगति का प्रतीक है। आज के युग में शोर का चक्रव्यूह हमें चारों ओर से घेरता जा रहा है। सुबह बिस्तर से उठने से लेकर रात में बिस्तर पर जाने तक घर-घर और होटलों में रेडियो, टेलीविजन, स्टीरियो का शोर, सड़कों पर आते-जाते वाहनों के गुर्राते इंजनों तथा उनके कर्कश हार्न का शोर, रेलवे स्टेशनों के आस-पास यात्रियों और रेलगाडियों के आने-जाने का शोर, आसमान में हवाई जहाज का शोर, कल-कारखानों में मशीनों का शोर, मंदिर-मस्जिदों, गुरुद्वारों और नुक्कड़ों पर लाउडस्पीकरों का शोर, शादीब्याह-पर्व त्यौहारों के अवसरों पर बैण्ड बाजों का शोर, जीवन का हर क्षेत्र शोर से घिर गया है।

शोर प्रदूषण उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है। वर्तमान सदी में यह विकराल रूप धारण कर लेगा और मानव- जीवन का अस्तित्व ही खतरे में पड़ जाएगा। एक अनुमान के अनुसार इस सदी के प्रारम्भ में शहरी आबादी के लगभग 40 प्रतिशत लोग कान के बहरेपन, कुछ लोग मानसिक रूप से अस्वस्थ और कुछ हृदय रोग के शिकार हो जाएंगे।

शोर के व्यापक दुष्परिणामों को देखते हुए यह सवाल उठना सहज है कि शोर के इन घातक नतीजों से किस तरह निजात पाई जाए? पूर्व सोवियत संघ के ध्वनि विशेषज्ञों ने कहा था कि यदि आप घर के आसपास होने वाले शोर से परेशान हैं तो घर को हल्का नीला या हल्का हरा पुतवा दें। अनुसंधानों से पता चला है कि विभिन्न रंगों के ध्वनि अवरोध गुणों में खासा फर्क है। हल्का नीला या हल्का हरा रंग ध्वनि के सर्वाधिक अवरोधक है।

हमें ध्वनि प्रदूषण को कम करने के लिए एक ऐसे विशेष कानून की जरूरत है जो अनावश्यक रूप से होने वाले शोर को प्रतिबंधित कर सके। कानून बनाने के अलावा देश में शोर के खिलाफ जन जागरण भी जरूरी है। यह निहायत जरूरी है कि लोग अपने आस-पास फैलते शोर और उसके खतरों को पहचाने और अपने स्तर पर इस प्रदूषण को कम करने के सार्थक प्रयास करें। समाचार पत्रों, पत्रिकाओं, रेडियो, टी.वी. सरीखे सशक्त जनसंचार माध्यमों को शोर के खिलाफ व्यापक जन-चेतना खड़ी करने के प्रयास करने चाहिए। नागरिकों को चाहिए कि वे अपने वाहनों में लाइसेंसर अवश्य लगवाएं। रेडियो, टेप, टी. वी. बहुत कम आवाज में बजाएं। अपने यहां होने वाले समारोह तथा धार्मिक कार्यक्रमों में ध्वनि विस्तारक यंत्र यानी लाउडस्पीकर का गैर जरूरी इस्तेमाल न करें।

कल कारखानों की जिन मशीनों में साइलेंसर लगते हों उनमें साइलेंसर लगाने चाहिए। मशीन चालक मजदूरों को अनिवार्य रूप से इयर प्लग्स, इयर मास्क, इयर ग्लास अथवा हेलमेट्स लगाने चाहिए। यथासंभव कल कारखाने और बड़े उद्योग धंधे आबादी से दूर लगाए जाएं।

कारखानों में शोर को नियंत्रित करने के लिए प्लास्टिक फर्श का निर्माण करना चाहिए। स्कूल, कालेज, अस्पतालों के परिसर में चारों और वृक्ष लगा दें। ऐसा करने से इन संस्थाओं पर बाहरी शोर गुल का असर नहीं पड़ेगा, कमरे के दरवाजे और खिड़कियों पर मोटे सूती कपड़े के पर्दे लगाकर कमरे में आ रहे बाहरी शोर को बहुत हद तक कम किया जा सकता है।

वैज्ञानिकों की राय है कि आम, ताड़, नारियल, इमली के ऊंचे वृक्ष वातावरण में 10 डेसीबल तक शोर कम कर देते हैं। ऐसी सूरत में इन वृक्षों को अधिक से अधिक तादाद में सड़कों के दोनों किनारे पर लगाया जाना जरूरी है। शोर प्रदूषण पर नियंत्रण पाने के लिए जन-चेतना की यह महत्ती आवश्यकता है। अगर समय रहते शोर प्रदूषण पर नियंत्रण नहीं किया गया तो जीवन दूभर हो जायेगा। ❑

187, कौशल्या पुरी कालोनी
नौलखा, इन्दौर (म.प्र.

शहद खाइए, स्वस्थ दीर्घ जीवन पाइए

महाराज

गोवध निषेध आंदोलन के समय हिंदू महासभा के प्रमुख श्री वीरजी ने दिल्ली में 75 दिन का अनशन दिया था। अनशन अवसान के समय मैंने देखा 75 दिन तक निराहार रहने के बाद भी वीरजी अधिक निर्बल नहीं हुए, जबकि इसी दौरान एक साधु अनशन के पन्द्रहवें दिन अपनी जीवन लीला समाप्त कर चुका था। वैसे भी, स्वस्थ से स्वस्थ व्यक्ति 30 दिन से अधिक निराहार रहकर जीवित नहीं रह सकता है।

इस संबंध में पूछने पर वीरजी ने बताया, "आयुर्वेद ग्रंथों में जिस मधु का अमृत की संज्ञा दी गई है उसी मधु की कृपा से मैं इतना लम्बा अनशन कर सका हूं। मैं अनशन काल में औषधि के रूप में प्रतिदिन एक छटांक (लगभग 60 ग्राम) शहद का सेवन करता रहा।" वीरजी के इस शहद प्रयोग से प्रभावित होकर मैं भी प्रतिदिन 50 ग्राम शहद लेने लगा हूं। फलस्वरूप 80 वर्ष की आयु में आज भी मैं पूर्ण स्वस्थ हूं।

आहार विशेषज्ञों ने चीनी को स्वास्थ्य के लिए अनुपयोगी तथा हानिकारक बताया है और चीनी के स्थान पर गुड़ या शहद खाने की सलाह दी है। अतः जहां तक संभव हो चीनी के स्थान पर शहद का ही सेवन करना चाहिए।

पोषक तत्व तथा गुण

शहद शक्तिवर्द्धक, स्वास्थ्यप्रद और औषधीय गुणों से युक्त प्रकृति प्रदत्त खाद्य पदार्थ तथा टानिक है। इसके सेवन से जहां हमें शक्ति प्राप्त होती है, वहीं हमारा रोगों से बचाव भी होता है। शरीर को ताकतवर तथा नीरोग बनाए रखने के लिए जिन तत्वों का होना परमावश्यक है, वे प्रायः सभी शहद में विद्यमान हैं। शहद में लगभग 40 प्रतिशत ग्लूकोस, 38 प्रतिशत फ्रक्टोज, 2 से 5 प्रतिशत सुक्रोज, मालटोज, डेक्स्ट्रिन्स, गोंद, मोम तथा क्लोरोफिल होता है। इनके अतिरिक्त प्रोटीन, एसिड्स, एनजाइन्स व लौह, कैलशियम, मैंगनीशियम तथा मैगनीज, सल्फर, कापर, क्लोरीन, फासफोरस आदि चौदह प्रकार के खनिज लवण पाए जाते हैं। विटामिनों में विटामीन ए, सी तथा बी$_1$, बी$_2$, बी$_6$ एवं बी$_{12}$ पाये जाते हैं। सौ ग्राम शहद में 360 कैलोरी शक्ति प्राप्त होती है जबकि 100 ग्राम देशी घी से 300 कैलोरी शक्ति ही प्राप्त होती है।

शहद पाचन क्रिया को स्वस्थ बनाता है,

शारीरिक तथा मानसिक शक्ति बढ़ाता है, हृदय को शक्ति प्रदान करता है, थकावट दूर करता है तथा मनुष्य को स्वस्थ एवं दीर्घजीवी बनाता है। शहद का मुख्य गुण यह है कि पेट में पहुंचते ही पचकर तत्काल शक्ति प्रदान करता है।

सेवन विधि

शहद भोजन से पहले, भोजन के साथ तथा भोजन के बाद भी लिया जा सकता है। इसका सेवन सभी ऋतुओं में लाभकारी है। यह खाद्य पदार्थों तथा औषधियों के साथ भी खाया जाता है और अकेले भी। योगवाही वृत्ति होने के कारण यह जिस पदार्थ तथा औषधि के साथ खाया जाता है, उसके गुणों को कई गुणा प्रभावकारी बना देता है। इसी कारण आयुर्वेदिक औषधियां शहद के साथ खाई जाती हैं। शहद को जल, दूध, दही, मलाई, फलों के रस, चाय, टोस्ट, रोटी, सब्जी, नींबू आदि किसी भी खाद्य पदार्थ के साथ खाया जा सकता है।

शहद न उष्ण है, न शीतल। गर्म चीज के साथ लेने पर यह गर्म तथा ठंडी चीज के साथ लेने पर यह ठंडा प्रभाव दिखाता है। अतः गर्मियों में ठंडे पेय के साथ तथा सर्दियों में गर्म पेय के साथ एवं वर्षा ऋतु में प्राकृतिक रूप में ही इसका सेवन करना चाहिए। अधिक गर्म करने तथा अधिक गर्म चीज में मिलाने से इसके गुण नष्ट हो जाते हैं। अतः इसे हल्के गर्म पेय पदार्थ में मिलाना चाहिए।

घी तेलादि चिकने पदार्थों में समान मात्रा में शहद मिलाने से वे विष तुल्य बन जाते हैं अतः चिकने पदार्थों में समान मात्रा में शहद मिलाकर उनका सेवन नहीं करना चाहिए।

विभिन्न अवस्थाओं में शहद का उपयोग

थकावट में : शहद का मुख्य गुण थकावट को दूर करना है। चीनी से पाचन अंग खराब होते हैं, पेट में वायु पैदा होती है, किंतु शहद वायु बनने को रोकता है, शारीरिक तथा मानसिक शक्ति को बढ़ाता है। अतः रात्रि में अथवा जब भी थकावट महसूस हो, दो चम्मच शहद आधे गिलास पानी में नींबू का रस निचोड़कर पीलें, सारी थकावट दूर हो जाएगी।

हृदय की कमजोरी में : शहद रोगग्रस्त हृदय को शक्ति देता है तथा स्वस्थ हृदय को पुष्ट एवं शक्तिशाली बनाता है। जब खून में ग्लाइकोर्जन की कमी से रोगी को बेहोश होने का डर हो तो शहद खिलाकर रोगी को बेहोश होने से बचाया जा सकता है। निर्बलता अथवा सर्दी के कारण जब हृदय की धड़कन अधिक हो जाए, दम घुटने लगे तो दो चम्मच शहद सेवन करने से नवीन शक्ति मिलती है। एक चम्मच शहद प्रतिदिन सेवन करने से हृदय सबल बनता है।

अपच तथा कब्ज में : शहद पाचन अंगों में वायु बनना रोकता है, अजीर्ण तथा उदर संबंधी रोगों को दूर कर भूख बढ़ाता है एवं भोजन को पचाकर शरीर को शक्ति देता है। यह प्राकृतिक हल्का दस्तावर है, अतः कब्ज के रोगी को विशेष उपयोगी है। प्रातः तथा रात्रि को सोने से पहले 50 ग्राम शहद पानी या दूध के साथ पीने से अथवा त्रिफला के साथ लेने से मदांग्नि तथा कब्ज की शिकायत दूर हो जाती हैं।

दमा तथा फेफड़े के रोग में : दमा और फेफड़े के रोग जैसे बोन्काइटिस, निमोनिया, क्षयरोग आदि शहद के सेवन से दूर होते हैं। शहद फेफड़ों को बल देता है, खांसी, गले की खुश्की, स्नायुकष्ट तथा छाती की घरर–घरर की आवाज दूर करता है। कमजोर मनुष्य, जिनके फेफड़े कफ से भरे रहते हैं और जिन्हें सांस लेने में कठिनाई होती है, उन्हें दो चम्मच प्याज के रस में दो चम्मच शहद मिलाकर देने से लाभ होता है।

गर्भावस्था में : शहद में प्रोटीन तथा हारमोन होते हैं। गर्भावस्था में रक्त की कमी आ जाती है। दो चम्मच शहद प्रतिदिन सेवन करने से यह कमी नहीं आती तथा पर्याप्त प्रोटीन और हारमोन भी मिल जाते हैं। यदि गर्भवती महिला प्रतिदिन दूध के साथ शहद का सेवन करे तो एक ओर जहां वह स्वस्थ रहेगी, वहीं दूसरी ओर उसका बच्चा स्वस्थ, सुडौल तथा आकर्षक होगा।

नेत्र रोगों में : उन सभी खाद्य पदार्थों का सेवन जिनमें विटामिन 'ए' होता है, नेत्रों की सुरक्षा एवं नेत्ररोगों को दूर करने से लाभकारी होता है। विटामिन ए युक्त होने के कारण शहद नेत्रों के लिए लाभकारी है। नेत्र विशेषज्ञ डा. आर. जी शर्मा के अनुसार, "प्रतिदिन एक बूंद शहद नेत्रों में डालने से मोतियाबिन्द से बचा जा सकता है। जिन लोगों को मोतियाबिन्द हो गया हो, यदि वे प्रारंभिक अवस्था में तीन–चार सप्ताह तक शहद का उपयोग करें तो उन्हें निश्चित रूप से लाभ होगा।"

शिशु अवस्था में : शिशुओं को प्रतिदिन दिन में तीन बार आधा–आधा चम्मच शहद चटाने से वे स्वस्थ तथा हृष्ट–पुष्ट रहते हैं। दांत निकालने वाले बच्चों के मसूढ़ों पर शहद रगड़ने से दांत निकलते समय उन्हें कष्ट नहीं होता। नींद में रोने वाले बच्चों को नियमित शहद चटाने से उनका नींद में रोना बंद हो जाता है।

शुद्धता की पहचान

- शुद्ध शहद पानी में नहीं घुलता।
- रूई की बत्ती शुद्ध शहद में भिगोकर जलाने पर जलती रहती है, बुझती नहीं।
- शुद्ध शहद कपड़े तथा कागज पर डालने से उन पर निशान तथा धब्बा नहीं बनता।
- शुद्ध शहद में जीवित मक्खी डालने पर वह उड़ जाती है, शहद उसके पंखों पर नहीं चिपकता।
- शुद्ध शहद को कुत्ता नहीं खाता।
- शुद्ध शहद सर्दी में जम जाता है तथा गर्मी पाकर पिघल जाता है।

शुद्ध शहद के सेवन से मनुष्य स्वस्थ, बलिष्ठ, नीरोग तथा दीर्घजीवी बनता है। वृद्धों के लिए यह उत्तम भोजन है। इसका सेवन वृद्धावस्था के कष्टों से बचता है। यदि मनुष्य आजीवन नियमित रूप से शहद का सेवन करे तथा स्वास्थ्य को हानि पहुंचाने वाले, दुर्व्यसनों से बचा रहे तो वह शतायु प्राप्त कर सकता है। ❑

पो. एवनी,
झांसी–284204

ग्रामीण विकास मंत्रालय द्वारा मध्य प्रदेश में पेयजल की कमी को दूर करने के लिए धन जारी

मध्य प्रदेश में सूखे की स्थिति का मुकाबला करने के लिए राहत कार्यों को आसानी से चलाने के लिए ग्रामीण विकास मंत्रालय ने पहले से जारी दिशा–निर्देशों के तहत प्राथमिकताओं में छूट दी है। अब पेयजल की कमी से प्रभावित इलाकों में त्वरित ग्रामीण जल आपूर्ति कार्यक्रम और प्रधानमंत्री ग्रामोदय योजना (ग्रामीण पेयजल) के तहत निर्धारित धन का उपयोग चालू ग्रामीण पेयजल योजनाओं के तहत सुविधाओं की मरम्मत, सुधार और उन्हें बदल कर नई सुविधा लगाने के लिए भी किया जा सकेगा।

राज्य के ग्रामीण इलाकों में पेयजल उपलब्ध कराने के लिए त्वरित ग्रामीण जल आपूर्ति कार्यक्रम के तहत वित्त वर्ष 2001–2002 में 8,877 लाख रुपये का प्रावधान किया गया था। ग्रामीण विकास मंत्रालय ने इस राशि में से पहली किस्त के रूप में 4438.50 लाख रुपये जारी कर दिए हैं। ग्रामीण विकास मंत्री श्री एम. वेंकैया नायडु ने बताया कि इस योजना के 571.37 लाख रुपये राज्य सरकार के पास पिछले वर्ष के पड़े हैं। इस तरह राज्य सरकार के पास अब इस योजना के तहत खर्च के लिए 5009.87 लाख रुपये उपलब्ध हैं।

प्रधानमंत्री ग्रामोदय योजना (ग्रामीण पेय जल) के तहत वर्तमान वित्त वर्ष में 1803.55 लाख रुपये जारी किए जा चुके हैं जिसमें से 853.27 लाख खर्च किए जाने की सूचना राज्य सरकार ने भेज दी है। वर्ष 2001–2002 में प्रधानमंत्री ग्रामोदय योजना के तहत केन्द्रीय सरकार के हिस्से के रूप में 9,225 लाख रुपये आवंटित किए हैं। राज्य सरकार इस राशि को और इसके साथ इसके दस प्रतिशत यानि 922.5 लाख रुपये को ग्रामीण पेयजल आपूर्ति के लिए खर्च कर सकती है।

राजस्थान सरकार को ढाई लाख टन अनाज जारी

ग्रामीण विकास मंत्रालय ने राजस्थान सरकार को काम के बदले अनाज कार्यक्रम के तहत ढाई लाख टन अनाज का अतिरिक्त कोटा जारी किया है। शीघ्र ही मंत्रालय द्वारा 2.86 लाख टन की एक और खेप जारी की जाएगी।

राज्य सरकार ने बताया है कि 2.30 लाख टन अनाज पहले की उठाया जा चुका है।

अरुणाचल प्रदेश में स्वच्छता की भावना जाग्रत करने के लिए अभियान

ग्रामीण विकास मंत्रालय ने अरुणाचल प्रदेश में जल और स्वच्छता पर सूचना, शिक्षा और संचार आई.ई.सी. अभियान की परियोजनाओं के प्रस्तावों को मंजूरी दी है। ये परियोजनाएं वेस्ट कामेंग, अपर सुबानसिरी, दिवांग घाटी और लोअर सुबानसिरी के चार जिलों में चलाई जाएंगी। इसके तहत 20 विकास खंडों के 1,700 गांवों को लाभ होगा।

ग्रामीण विकास मंत्रालय ने इन चार जिलों में गहन जागरूकता अभियान चलाने के लिए 109.94 लाख रुपये की मंजूरी दी है। पहली किस्त के रूप में 54.97 लाख रुपये जारी किए जा चुके हैं। इस अभियान का उद्देश्य लोगों में स्वच्छता की भावना जाग्रत करना है।

साभार : पत्र सूचना कार्यालय

आर. एन./708/57
डाक–तार पंजीकरण संख्या : डी (डी.एल.) 12057/2001
आई.एस.एस.एन. 0971–8451
पूर्व भुगतान के बिना के अधीन आर.एम.एस. दिल्ली में डाक में डालने की अनुमति (लाइसेंस) : यू (डी.एन.)–55/2001

R.N./708/57
P&T Regd. No. D(DL) 12057/2001
ISSN 0971-8451
Licenced under U (DN)-55/2001
to Post without pre-payment at R.M.S. Delhi.

श्री सुरेश चोपड़ा, महानिदेशक प्रकाशन विभाग, पटियाला हाऊस, नई दिल्ली–110001 द्वारा प्रकाशित और मुद्रित।
मुद्रक : अरावली प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स प्रा. लि., डब्ल्यू–30 ओखला इन्डस्ट्रीयल एरिया–II, नई दिल्ली–20 संपादक : बलदेव सिंह मदान